वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 227

नवदेवता विधान
(वृहत्)

–रचयित्री–

जम्बूद्वीप रचना निर्माण की पावन प्रेरिका
पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के
75वें हीरक जयन्ती-शरदपूर्णिमा 2008 के उपलक्ष्य में प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404
फोन नं.- (01233) 280184, 280236
Website : www.jambudweep.org
E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2534	मूल्य
1100 प्रतियाँ	श्रुतपंचमी पर्व 8 जून 2008	28/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

Our Sacred Books are our light houses erected in the great Sea of time.

'अर्थात् सद्पुस्तकें वह प्रकाशगृह हैं, जो समय के विशाल समुद्र में खड़ी की गई हैं।' आत्मोन्नति के मार्ग में सुसाहित्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में यदि शास्त्र नहीं होते, तो हम आत्मा का अस्तित्व नहीं जान पाते और बिना कर्मसिद्धान्त को समझे चतुर्गतिरूप संसार से अनभिज्ञ ही रहते। शास्त्र तो मानो साक्षात् केवली का स्वरूप हैं। इन्हें पढ़कर हम अपने वर्तमान, भूत, भविष्य को जान रहे हैं और मात्र जान ही नहीं रहे हैं अपितु हेयोपादेय का निर्णय भी कर रहे हैं।

सद्गुरु सर्वत्र उपलब्ध नहीं होते हैं परन्तु सत्साहित्य (शास्त्र) प्रत्येक मंदिर, साहित्य सदन एवं स्वाध्याय भवन में उपलब्ध हो जाता है। सत्साहित्य का उपयोग तभी होता है जब साधक उसका अध्ययन करके उनमें अपना प्रतिबिम्ब देखता है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने बीसवीं शताब्दी में साहित्यिक क्षेत्र में अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया है। पूज्य माताजी की कलम से एक-दो नहीं बल्कि अनेकों विधानों की रचना हुई है जिनकी आज सम्पूर्ण भारत में धूम मची हुई है। हमें गौरव है कि वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से इन ग्रंथों को प्रकाशित करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हो रहा है। वस्तुतः साहित्य जगत ऐसी महामनीषी पूज्य माताजी का युग-युगों तक ऋणी रहेगा। विधानों की इसी शृँखला में पूज्य माताजी ने इस ''वृहद् नवदेवता विधान'' की सुन्दर रचना की है जिसमें नवदेवताओं की महिमा का व्यापक वर्णन है। यह विधान प्रत्येक करने-कराने वालों के लिए इस लोक में मनोकामनापूरक होने के साथ-साथ शाश्वत सुख की भी प्राप्ति करावे, यही मंगलभावना है।

प्रस्तावना

–आर्यिका चन्दनामती

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता कहलाते हैं। आगमानुसार इनकी भक्ति, पूजा करने से पापों का नाश होता है।

जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है, 18 दोषरहित और 46 गुणों से सहित हैं वे कहलाते हैं अर्हंत परमेष्ठी। जिन्होंने आठों कर्मों का नाश कर दिया है, आठ गुणों से सहित लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं वे हैं सिद्ध परमेष्ठी। जिनके 36 गुण होते हैं, जो संघ के नायक दिगम्बर साधु शिष्यों को शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित्तादि देते हैं वे हैं आचार्य परमेष्ठी। जिनको ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों या उस समय के सभी प्रमुख शास्त्रों का ज्ञान है, जो मुनि संघ में साधुओं को पढ़ाते हैं वे कहलाते हैं उपाध्याय परमेष्ठी तथा 28 मूलगुणों का पालन करते हुए रत्नत्रय के साधन हेतु ध्यान, अध्ययन में निमग्न साधु परमेष्ठी की श्रेणी में आते हैं। अरहंत भगवान के द्वारा कहे गए धर्म को जिनधर्म कहते हैं। जिनेन्द्रदेव द्वारा कहे गए गणधर देव आदि ऋषियों द्वारा रचे गए शास्त्र को जिनागम कहते हैं। अरहंत, सिद्ध की प्रतिमा को जिनचैत्य तथा जिनमंदिर को जिनचैत्यालय कहते हैं।

भगवान महावीर के प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी ने समवसरण में प्रवेश कर भगवान महावीर का दर्शन करते ही भक्ति में भावविभोर हो निम्न स्तुति की थी–

''जयतु भगवन् हेमाम्भोज प्रचारविजृंभितौ''। इस भक्ति को साधु एवं व्रती श्रावक तीनों काल की सामायिक में पढ़कर भगवान की स्तुति करते हैं। इस चैत्यभक्ति में श्री गौतमस्वामी ने भगवान महावीर की स्तुति करके अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और चैत्यालय इन नवदेवताओं की स्तुति की है पुनः जिनचैत्य अर्थात् जिनप्रतिमा की विशेषरूप से वंदना की है अतः यह भक्ति ''चैत्यभक्ति'' इस सार्थक नाम वाली है। जिनमंदिर और जिनप्रतिमाएँ अकृत्रिम अनादिनिधन तीनों लोकों में हैं तथा कृत्रिम ढाईद्वीप संबंधी 15 कर्मभूमियों में हैं। इन पन्द्रह कर्मभूमियों में विदेह के एक सौ साठ भेद तथा पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों की 10 कर्मभूमियाँ ऐसी कुल मिलाकर एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ हो जाती हैं। इन कर्मभूमियों में ही अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये पाँच परमेष्ठी तथा जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य व चैत्यालय भी होते हैं।

इस नवदेवता विधान में 250 ग्रंथों की लेखिका, ब्राह्मी माता की प्रतिमूर्ति परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने नवदेवताओं की पूजा रची है।

जिसे पढ़कर हम सहजतापूर्वक नवदेवताओं की महिमा का परिज्ञान कर सकते हैं। सर्वप्रथम मंगलाचरण में नवदेवताओं को नमस्कार करते हुए आर्याछंद में नवदेवता वंदना है। इस पूजन विधान में एक समुच्चय एवं नवदेवताओं की 9, कुल मिलाकर 10 पूजाएँ हैं। पहली नवदेवता की समुच्चय पूजा है। दूसरी पूजा में 46 अर्घ्य (जन्म के 10, केवलज्ञान के 10, देवकृत 14 अतिशय के 14 अर्घ्य, 8 प्रातिहार्य के 8 एवं चार अनन्त चतुष्टय के 4 अर्घ्य) एवं 1 पूर्णार्घ्य है। तीसरी पूजा में सिद्धों के 8 गुणों के 8 अर्घ्य एवं 1 पूर्णार्घ्य है। चौथी पूजा में 36 मूलगुण के 36 अर्घ्य एवं 1 पूर्णार्घ्य है। पाँचवीं पूजा में उपाध्याय परमेष्ठी के 25 मूलगुण के 25 अर्घ्य व 1 पूर्णार्घ्य है। छठी पूजा में साधु परमेष्ठी के 28 मूलगुण के 28 अर्घ्य एवं 1 पूर्णार्घ्य है। सातवीं जिनधर्म पूजा में कुल 43 अर्घ्य और 4 पूर्णार्घ्य हैं। पूजा नं. 8 में 38 अर्घ्य व 4 पूर्णार्घ्य हैं। नवमीं पूजा में मध्यलोक की कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाओं के 24 अर्घ्य 3 पूर्णार्घ्य हैं। पूजा नं. 10 में तीनों लोकों के कृत्रिम-अकृत्रिम मंदिरों के कुल 24 अर्घ्य व 5 पूर्णार्घ्य हैं। इस प्रकार दश पूजाओं में कुल 272 अर्घ्य और 21 पूर्णार्घ्य हैं।

सभी पूजाओं के पश्चात् आगम के गूढ़तम ज्ञान को स्पष्ट व सरल भाषा में बताने वाली जयमाला हैं। दस पूजाओं के पश्चात् बड़ी जयमाला में 170 कर्मभूमियों के नवदेवताओं का विस्तृत वर्णन है। पुनः अंतिम प्रशस्ति में पट्ट परम्परा को बताते हुए रचयित्री ने इस विधान को सभी भव्यात्माओं के लिए मंगलकारी बताया है।

विधान के पश्चात् मंडल विधान की आरती व भजन के साथ ही नवदेवता व्रत (नवरात्रि के दिनों में ही यह व्रत किया जाता है) का शास्त्रोक्त वर्णन है। जिसको करके भक्तजन अपने मनोरथों की सिद्धि के साथ क्रमशः पारलौकिक सुख की भी प्राप्ति कर सकते हैं। इस प्रकार यह विधान सभी करने-कराने वालों के लिए मंगलकारी हो, यही शुभेच्छा है।

आभार

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित इस ''नवदेवता'' विधान के प्रकाशन में श्रीमती सुनीता जैन ध.प. श्री विपिन कुमार जैन, राजकोट (गुजरात) ने ज्ञानदानस्वरूप अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया, एतदर्थ संस्थान उनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

—सम्पादक

राष्ट्रगौरव परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

1. जन्म, वैराग्य और दीक्षा—

22 अक्टूबर सन् 1934, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में 'मैना' का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र 18 वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् 1952 में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया।

जैनेश्वरी दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् 1956 में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके **''आर्यिका ज्ञानमती''** नाम प्राप्त किया।

2. अध्ययन और अध्यापन –

ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधनारूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

3. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से –

भगवान महावीर के पश्चात् 2500 वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् 1969-70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज 250 की संख्या को पार कर चुके हैं। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास चारों अनुयोगों रूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र

भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध रहता है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

4. सिद्धांत चक्रेश्वरी –

इसी प्रकार पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' के लेखन को पूर्ण किया है। 8 अक्टूबर सन् 1995 में उन्होंने इस टीका का मंगलाचरण लिखा और 4 अप्रैल 2007 को 3100 पृष्ठों में षट्खण्डागम की सोलहों पुस्तकों की टीका लिखकर पूर्ण करके एक नूतन कीर्तिमान स्थापित किया है, जिसमें से प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुस्तक हिन्दी टीका सहित प्रकाशित भी हो चुकी है। आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य-संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

5. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर –

जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत्वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् 1969 में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् 1978 में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग 100 विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

6. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार–

सन् 1985 में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ पुनः अनेक संगोष्ठियां सम्पन्न होती रहीं और सन् 1998 में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन

द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाङ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुंचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ प्रस्तुत हो चुकी हैं।

7. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ—

किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा 5 फरवरी 1995 को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्म साधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

8. इतिहास भी परिवर्तन के लिए बाध्य हुआ—

सन् 1992 से पूज्य माताजी की दृष्टि आधुनिक शिक्षाजगत में पढ़ायी जाने वाली पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रान्त विषयवस्तु पर गयी, तो 'भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक हैं' इत्यादि भ्रांतियों को वहाँ देखकर उनका हृदय अत्यंत उद्वेलित हो उठा। फलस्वरूप प्रधानमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री, निदेशक-NCERT इत्यादि से उनकी प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा शिक्षाजगत तक यह संदेश पहुँचा और दस वर्षों के अथक प्रयास द्वारा पाङ्य पुस्तकों में संशोधन का क्रम प्रारंभ हो सका।

9. तीर्थ विकास की भावना—

तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी महान संस्कृति की धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर' में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् 1993 से 1995 तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के सुफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि 'राजगृही' में 'मुनिसुव्रतनाथजिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली पावापुरी में जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली गुणावां जी में गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, श्री सम्मेदशिखर जी में भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

वर्तमान में तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की श्रृँखला में भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में 'पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' के निर्माण हेतु शिलान्यास सम्पन्न किया जा चुका है तथा शीघ्र ही निर्माणकार्य पूर्ण करके इस विस्मृत जन्मभूमि का परिचय भी विश्व को प्रदान किया जा सकेगा।

10. विश्व में अनोखी 108 फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा—

विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से प्रारंभ हो चुका है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

11. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ—

शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओं द्वारा वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' के निर्माण की योजना मूर्तरूप ले रही है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके विशेष निर्माण सम्पन्न किया जायेगा।

12. धर्मप्रभावना के विविध आयाम—

जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का निष्पादन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली में उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्ड रूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् 1998 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् दीक्षास्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'केवलज्ञान कल्याणक मंदिर' में स्थापित होकर युगों-युगों तक भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिलाता

रहेगा। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् 2003 में 'भगवान महावीर ज्योति' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी श्रृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल जी द्वारा उद्घाटित) भी उनकी प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। आस्था टी.वी. चैनल द्वारा पूज्य माताजी के प्रभावक प्रवचन लम्बे समय से प्रसारित किये जा रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों इकाईयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित किये हुए है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

13. संघर्ष विजेत्री—

पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्षपरम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है। किसी भी संस्था, तीर्थ, चंदे आदि की दानराशि को अपनी संघ व्यवस्था में समाहित न करने का उनका नियम है। प्रारंभ से ही इस नियम का पालन करते हुए अपने कर्तव्य पथ पर वे अडिग हैं। यही कारण है कि उन्हें लम्बी-लम्बी यात्राएं कराने में अपना कर्तव्यपालन करने वाले श्रावक भी अपना सौभाग्य समझते हैं।

14. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन—

23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान

कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। पुनः वर्ष 2006 को ''सम्मेदशिखर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। इसके पश्चात् केवलज्ञानकल्याणक की भूमि ''अहिच्छत्र'' तीर्थ पर सन् 2007 में तिखाल वाले बाबा भगवान पार्श्वनाथ का सहस्राब्दि महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव करने की पुण्य प्रेरणा भी प्रदान कर तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव के त्रिवार्षिक आयोजन का समापन 4 जनवरी 2008 को घोषित किया है।

भगवान नेमिनाथ की निर्वाणभूमि 'श्री गिरनार जी सिद्धक्षेत्र' की सुरक्षा हेतु भी पूज्य माताजी ने जनजागरण का शंखनाद किया है।

15. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती—

वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. 2532 अर्थात् 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण करने वाली पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गई हैं। 14 से 16 अप्रैल 2006 तक **'गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'** का आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

इस महोत्सव के साथ ही दीक्षा स्वर्ण जयंती वर्ष भी धूमधाम से पूरे देश के **भिन्न** दिगम्बर जैन समाज एवं संगठनों द्वारा अनेक आयोजनों के साथ मनाया गया।

16. अमृतमय हों वर्ष तुम्हारे-

जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा आयु है, अर्थात् 18 वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर लिया तथा उस त्यागमयी जीवन के 56 वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये हैं।

महान चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन करते हुए भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें अमृत महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो तथा आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं—

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है-कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, तेरहद्वीप जिनालय तथा नवग्रहशांति जिनमंदिर।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी, मिनी ट्रेन, झूलें आदि हैं।

11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिनभर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित भगवान ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य तीर्थों के दर्शन हेतु कम से कम एक बार अवश्य पधारें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी 19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.

मण्डल का नक्शा

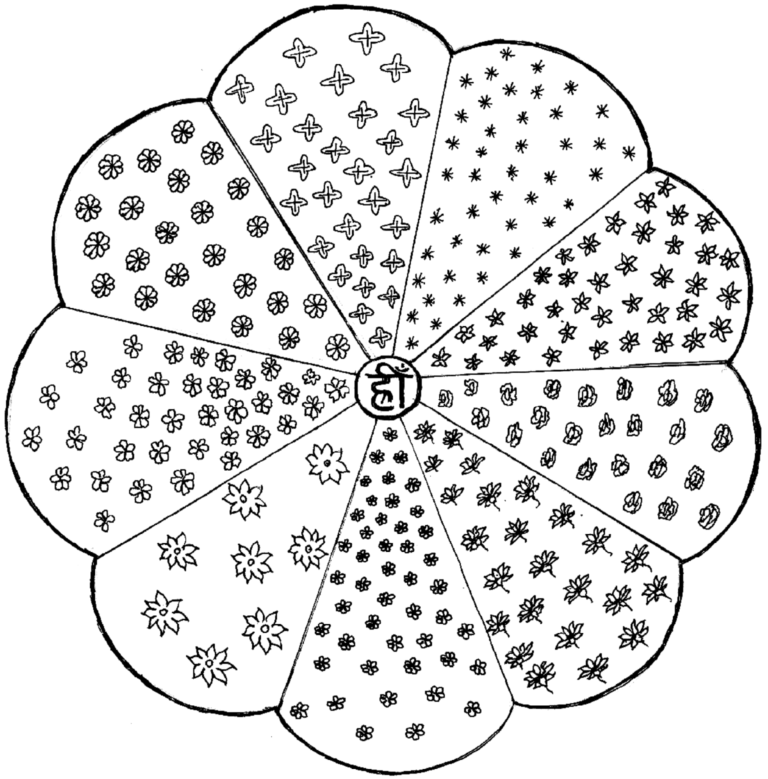

इस मण्डल विधान में 10 पूजा में कुल 272 अर्घ्य और 21 पूर्णार्घ्य हैं।

अरहंत भगवान के 46 गुणों के	**– 46 अर्घ्य**
सिद्धों के 8 गुणों के	**– 8 अर्घ्य**
आचार्यों के 36 मूलगुणों के	**– 36 अर्घ्य**
उपाध्याय परमेष्ठी के 25 मूलगुणों के	**– 25 अर्घ्य**
साधु परमेष्ठी के 28 मूलगुणों के	**– 28 अर्घ्य**
जिनधर्म के	**– 43 अर्घ्य**
जिनागम के	**– 38 अर्घ्य**
जिनचैत्य के	**– 24 अर्घ्य**
जिनचैत्यालय के	**– 24 अर्घ्य**

नवदेवता विधान

—मंगलाचरणं—

अर्हन्तो मंगलं कुर्युः, सिद्धाः कुर्युश्च मंगलम्।
आचार्याः पाठकाश्चापि, साधवो मम मंगलम्।।१।।
मंगलं जिनधर्मः स्यात्, जिनवाणी च मंगलम्।
जिनार्चा[1] जिनगेहाश्च, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।२।।

नवदेवता वंदना

—आर्याछंद—

श्रीम[2]-दमरेन्द्रमुकुट-प्रघटितमणि-किरण-वारिधाराभिः।
प्रक्षालित-पदयुगलान्-प्रणमामि जिनेश्वरान्भक्त्या।।१।।
अष्टगुणैः समुपेतान्प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन्।
सिद्धान्सतत-मनन्तान्, नमस्करो-मीष्टतुष्टि-संसिद्ध्यै।।२।।
साचारश्रुत-जलधीन्प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग-कमलानि दधे शिरसि मेऽहम्।।३।।
मिथ्यावादि-मदोग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसिवचनसंदर्भान्।
उपदेशकान्प्रपद्ये मम दुरितारि-प्रणाशाय।।४।।

१. जिनार्चा–जिनप्रतिमा। २. पंचगुरुभक्ति से उद्धृत।

सम्यग्दर्शनदीप-प्रकाशका-मेयबोधसंभूताः।
भूरिचरित्र-पताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु।।५।।
क्षान्त्यार्जवादिगुणगणं[1]-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ।।६।।
मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।
भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।
भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।
इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

अथ नवदेवतापूजा विधान प्रतिज्ञापनाय मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

नवदेवता वंदना (हिन्दी)

श्रीमन् इंद्रों के मुकुटों की, मणिप्रभा जलधारा से।
प्रक्षालित पदयुगल जिनेश्वर, को प्रणमूं नित भक्ती से।।१।।
दुष्ट अष्ट विधकर्म शत्रुगण, नाशक अष्ट गुणों से युत।
नमूं अनंतों सिद्धों को नित, इष्ट तुष्टि सिद्धी हेतु।।२।।
द्वादशांग श्रुत जलधि पार कर, शुद्ध महान् चरित में रत।
आचार्यों के पदयुग कमलों, को निज शिर पर धारूं नित।।३।।
मिथ्यावादी के मद तम-विध्वंसी वचन सहित पाठक।
निज दुरितारि प्रणाशन हेतू, शरण लिया तव उपदेशक।।४।।
सम्यग्दर्शन दीप प्रकाशी, ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान उदय।
भूरि चरित ध्वजयुत वे मेरी, रक्षा करें साधुगण सब।।५।।

१. चैत्यभक्ति से उद्धृत।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूं सुख खान।।६।।

मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील जिनवचन नमूं मैं शिर नत कर।।७।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूं मैं।।८।।

भुवनत्रय में जितने जिनगृह,भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूं मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूं, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।

अथ नवदेवतापूजा विधान प्रतिज्ञापनाय मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

(पूजा नं.-1)

नवदेवता विधान

(समुच्चय पूजन)

—गीता छन्द—

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु त्रिभुवन वंद्य हैं।
जिनधर्म जिनआगम जिनेश्वर, मूर्ति जिनगृह वंद्य हैं।।
नव देवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें।
आह्वान कर थापें यहाँ, मन में अतुल श्रद्धा धरें।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणं।

—अथाष्टक—

गंगानदी का नीर निर्मल, बाह्य मल धोवे सदा।
अंतर मलों के क्षालने को, नीर से पूजूँ मुदा।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।१।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर मिश्रित गंध चंदन, देह ताप निवारता।
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरतहिं वारता।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।२।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षीरोदधी के फेन सम सित, तंदुलों को लायके।
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नवसु चढ़ायके।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।३।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चम्पा चमेली केवड़ा, नाना सुगन्धित ले लिये।
भव के विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।४।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में।
निज आत्म अमृत सौख्य हेतू, पूजहूँ नत भाल मैं।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।५।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर ज्योति जगमगे, दीपक लिया निज हाथ में।
तुम आरती तम वारती, पाऊँ सुज्ञान प्रकाश मैं।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।६।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंधधूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊँ सदा।
निज आत्मगुण सौरभ उठे, हों कर्म सब मुझसे विदा।।

नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।७।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगूर अमरख आम्र अमृत, फल भराऊँ थाल में।
उत्तम अनूपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूँ आज मैं।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।८।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत पुष्प चरु, दीपक सुधूप फलार्घ्य ले।
वर रत्नत्रय निधि लाभ यह, बस अर्घ्य से पूजत मिले।।
नवदेवताओं की सदा जो, भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि रिद्धि मंगल, पाय शिवकांता वरें।।९।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा — **जलधारा से नित्य मैं, जग की शांति हेत।**
नवदेवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत।।१०।।

शांतये शांतिधारा।

नानाविध के सुमन ले, मन में बहु हरषाय।
मैं पूजूँ नव देवता, पुष्पांजली चढ़ाय।।११।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य — **ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागम जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः।**

जयमाला

सोरठा — **चिच्चिंतामणिरत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हों।**
गाऊँ गुणमणिमाल, जयवंते वर्तो सदा।।१।।

(चाल–हे दीनबन्धु श्रीपति......)

जय जय श्री अरिहंत देवदेव हमारे।
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे।।
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूँ।
जय अष्ट कर्ममुक्त की मैं अर्चना करूँ।।२।।

आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं।
दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं।।
जैवंत उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी।
सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करें घनी।।३।।

जय साधु अठाईस गुणों को धरें सदा।
निज आत्मा की साधना से च्युत न हों कदा।।
ये पंचपरमदेव सदा वंद्य हमारे।
संसार विषम सिंधु से हमको भी उबारें।।४।।

जिनधर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा।
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा।।
जिन की ध्वनि पीयूष का जो पान करेंगे।
भव रोग दूर कर वे मुक्ति कांत बनेंगे।।५।।

जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं।
वे चित्स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं।।
कृत्रिम व अकृत्रिम जिनालयों को जो भजें।
वे कर्मशत्रु जीत शिवालय में जा बसें।।६।।

नव देवताओं की जो नित आराधना करें।
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करें।।
मैं कर्मशत्रु जीतने के हेतु ही जजूँ।
सम्पूर्ण ''ज्ञानमती'' सिद्धि हेतु ही भजूँ।।७।।

दोहा — **नवदेवों को भक्तिवश, कोटि कोटि प्रणाम।**
भक्ती का फल मैं चहूँ, निजपद में विश्राम।।८।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं........।

शांतिधारा, पुष्पांजलिः।

—गीता छंद—

जो भव्य श्रद्धाभक्ति से, नवदेवता पूजा करें।
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें।।
नवनिधि अतुल भंडार ले, फिर मोक्ष सुख भी पावते।
सुखसिंधु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते।।९।।

।। इत्याशीर्वादः ।।

(पूजा नं.-2)

अर्हन्त पूजा

—स्थापना-गीताछन्द—

अरिहंत प्रभु ने घातिया को, घात निज सुख पा लिया।
छ्यालीस गुण के नाथ अठरह, दोष का सब क्षय किया।।
शत इन्द्र नित पूजें उन्हें, गणधर मुनी वंदन करें।
हम भी प्रभो! तुम अर्चना के, हेतु अभिनंदन करें।।1।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठि समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठि समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठि समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं-स्रग्विणी छंद

साधु के चित्त सम स्वच्छ जल ले लिया।
कर्ममल क्षालने तीन धारा किया।।
सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।1।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध सौगंध्य से नाथ को पूजते।
सर्व संताप से भव्यजन छूटते।।
सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।2।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

धौत अक्षत लिये स्वर्ण के थाल में।
पुंज धर के जजूं नाथ के भाल मैं।।
सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।3।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

केतकी कुंद मचकुंद बेला लिये।
कामहर नाथ के पाद अर्पण किये।।
सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।4।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मुद्ग मोदक इमरती भरे थाल में।
आत्म सुख हेतु मैं अर्पिहूँ हाल में।।
सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।5।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ण के दीप में ज्योति कर्पूर की।
नाथ पद पूजते मोह तम चूरती।।
सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।6।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप को अग्नि में खेवते शीघ्र ही।
कर्म शत्रू जलें सौख्य हो शीघ्र ही।।

सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।7।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सेव अँगूर दाड़िम अनन्नास ले।
मोक्ष फल हेतु जिन पाद पूजूँ भले।।
सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।8।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य लेकर जजूँ नाथ को आज मैं।
स्वात्म संपत्ति का पाऊँ साम्राज मैं।।
सर्व अरिहंत को पूजहूँ भक्ति से।
कर्म अरि को हनूँ भक्ति की युक्ति से।।9।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- **जिन पद में धारा करूँ, चउसंघ शांती हेत।**
शांतीधारा जगत में, आत्यन्तिक सुख देत।।10।।

शांतये शांतिधारा।

चंपक हरसिंगार बहु, पुष्प सुगंधित सार।
पुष्पांजलि से पूजते, होवे सौख्य अपार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

(४६ अर्घ्य)

सोरठा- **परमानन्द समेत, श्री अरिहंत जिनेश हैं।**
निजगुण संपत्ति हेतु, तिनके गुणमणि को जजूँ।।1।।

इति मंडले प्रथमदलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

जन्म के दश अतिशय

नरेंद्र छंद- **जन्म समय से ही दश अतिशय, प्रभु के तन में सोहें।**
सौधर्मेन्द्र बना नित किंकर, प्रभु के मन को मोहे।।
देह पसेव रहित है प्रभु का, यह अतिशय मन भावे।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानन्द सुख पावें।।1।।

ॐ ह्रीं स्वेदरहित सहजातिशयधारक अर्हत्परमेष्ठिभ्यः अर्घ्यं....।

मात गर्भ से जन्में फिर भी, मलमूत्रादि रहित हैं।
मुनि मन को निर्मल करने में, सचमुच आप निमित्त हैं।।
सुर नर असुर इंद्र विद्याधर, बहु रुचि से गुण गावें।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानन्द सुख पावें।।2।।

ॐ ह्रीं निर्मलत्व सहजातिशयधारक अर्हत्परमेष्ठिभ्यः अर्घ्यं....।

प्रभु शरीर में श्वेत दुग्ध सम, रुधिर रहे अतिशायी।
रुधिर लाल नहिं यह शुभ अतिशय, सब जन मन सुखदायी।।
गणधरगण नित हर्षित मन से, प्रभु का ध्यान लगावें।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानन्द सुख पावें।।3।।

ॐ ह्रीं क्षीरगौर रुधिरत्व सहजातिशय सहितार्हत्परमेष्ठिभ्यः अर्घ्यं...।

तन सुडौल आकार मनोहर, समचतुरस्र कहावे।
जिस जिस अवयव का जितना है, माप वही मन भावे।।
इस अतिशययुत श्री जिनवर को, हम भी पूजें ध्यावें।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानन्द सुख पावें।।4।।

ॐ ह्रीं समचतुरस्रसंस्थान सहजातिशय सहितार्हत्परमेष्ठिभ्यः अर्घ्यं...।

वज्रवृषभनाराच संहनन, उत्तम प्रभु का जानो।
अद्भुत महिमाशाली जिनवर, का शुभ देह बखानो।
इस अतिशय को हम नित पूजें, अतिशय भक्ति बढ़ावें।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानन्द सुख पावें।।5।।

ॐ ह्रीं वज्रवृषभनाराचसंहनन सहजातिशय सहितार्हत्परमेष्ठिभ्यः अर्घ्यं..।

कोटिक कामदेव छवि लाजें, अतिशय रूप मनोहर।
इंद्र हजार नेत्र कर निरखें, तृप्त न होवे तो पर।।
सुन्दर सुन्दर सब परमाणू, प्रभु के तन बस जावें।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानन्द सुख पावें।।6।।

ॐ ह्रीं अतिशयरूप सहजातिशयसमन्विताार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

महा सुगंधित प्रभु का तन है, देव सुमन से बढ़कर।
अन्य सुरभि नहिं है इस जग में, उस सदृश अति सुखकर।।
जन्म समय से ही यह अतिशय, सब जन मन को भावे।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानन्द सुख पावें।।7।।

ॐ ह्रीं सौगन्ध्य शरीर सहजातिशयसमन्विताार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

एक हजार आठ शुभ लक्षण, प्रभु के तन में सोहें।
सब सर्वोत्तम गुण के सूचक, त्रिभुवन जन मन मोहें।।
जन्मकाल से ये शुभ लक्षण, सब इनको ललचावें।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानन्द सुख पावें।।8।।

ॐ ह्रीं अष्टोत्तरसहस्रशुभलक्षणसहितशरीरसहजातिशयधारकार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

तुलना रहित अतुल बल प्रभु तन, जग में है न किसी के।
इंद्र चक्रवर्ती से अद्भुत, शक्ती है जिन जी के।।
निज शक्ती के प्रगटन हेतू, हम भी प्रभु गुण गावें।
जो जन पूजें भक्ति भाव से परमानंद सुख पावें।।9।।

ॐ ह्रीं अप्रमितवीर्यसहजातिशयसमन्विताार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

प्रिय हित मधुर वचन अमृतसम, सबको तृप्त करे हैं।
बाल्यकाल में आप संग में, सुर शिशु आन रमे हैं।।
ऐसे अतिशय युत जिनवर की, हम नित पूज रचावें।
जो जन पूजें भक्ति भाव से, परमानंद सुख पावें।।10।।

ॐ ह्रीं प्रियहितवादित्वसहजातिशयसमन्विताार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

केवलज्ञान के दश अतिशय

रोला छन्द- चार चार सौ कोश, चारों दिश में जानो।
रहे सुभिक्ष सुकाल, यह जिन अतिशय मानो।।
केवलज्ञान दिनेश, प्रगट हुआ सुखदायी।
मैं पूजूँ शिरनाय, पाऊँ सुख अतिशायी।।1।।

ॐ ह्रीं गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

ज्ञान उदय तत्काल, नभ में गमन करे हैं।
पांच सहस धनु जाय, ऊपर अधर चले हैं।।
असंख्यात सुर आय, जय जय ध्वनि उचरें हैं।
मैं पूजूँ शिरनाय, कर्म कलंक टरे हैं।।2।।

ॐ ह्रीं आकाशगमनघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

जहाँ गमन प्रभु होय, प्राणी वध न वहाँ पे।
दयासिंधु जिनदेव, सबकी दया तहाँ पे।।
मुझ पर भी अब नाथ! दृष्टि दया की कीजे।
मैं पूजूं शिरनाय, रत्नत्रय निधि दीजे।।3।।

ॐ ह्रीं अदयाऽभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

कोटी पूरब वर्ष, कुछ कम उसमें जानो।
कवलाहार विहीन, तन की स्थिति सरधानो।
यह अतिशय जिनराज, भविजन श्रद्धा ठानें।
जो पूजें मन लाय, कर्म कुलाचल हानें।।4।।

ॐ ह्रीं कवलाहाराभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

घाति चतुष्टय घात, यह अतिशय सुखकारी।
सुर नर पशू अजीव, कृत उपसर्ग निवारी।।
गणधर मुनिगण नित्य, तुम चरणाम्बुज ध्यावें।
जो पूजें शिरनाय, अक्षय पद को पावें।।5।।

ॐ ह्रीं उपसर्गाभावघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

समवसरण में आप, चारों दिश मुख दीखे।
पूरब मुख ही आप, या उत्तरमुख तिष्ठे।।
यह अतिशय तुम नाथ! सब जन को सुखदायी।
मैं पूजूँ शिरनाय, पाऊँ सुख अतिशायी।।6।।

ॐ ह्रीं चतुर्मुखत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

सब विद्या के आप, ईश्वर एक कहे हैं।
तुमको पूजत भव्य, सम्यग्ज्ञान लहे हैं।।
यह अतिशय तुम नाथ, सब जन मन को भावे।
मैं पूजूँ शिरनाय, मेरे कर्म नशावें।।7।।

ॐ ह्रीं सर्वविद्येश्वरत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

परमौदारिक देह, पुद्गलमय कहलावे।
फिर भी छायाहीन, यह अतिशय मन भावे।।
कल्पवृक्ष तुम देव, तुम छाया मैं चाहूँ।
पूजूँ अर्घ चढ़ाय, भव भव ताप नशाऊँ।।8।।

ॐ ह्रीं छायारहितघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

नेत्र पलक नहिं होत, नहिं टिमकार प्रभू के।
सौम्य दृष्टि नासाग्र, अतिशयवान प्रभू के।।
अंतर्दृष्टी हेतु, मैं भी जिनपद ध्याऊँ।
पूजूं अर्घ चढ़ाय, फेर न भव में आऊँ।।9।।

ॐ ह्रीं पक्ष्मस्पंदरहितघातिक्षयजातिशयसमन्वितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

नहीं बढ़े नख केश, केवलज्ञानी प्रभु के।
दिव्य शरीर विशेष, यह अतिशय हैं प्रभु के।।
सम्यक्दर्शन हेतु, मैं त्रयकाल जजूँ हूँ।
जन्म मरण भय दु:ख, नाशन हेतु भजूँ हूँ।।10।।

ॐ ह्रीं समाननखकेशत्वघातिक्षयजातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

देवकृत चौदह अतिशय

शंभु छंद

सर्वार्धमागधी भाषा है, तीर्थंकर की भवि सुखकारी।
सुरकृत यह अतिशय सब जन के, मन चमत्कार करता भारी।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।1।।

ॐ ह्रीं सर्वार्धमागधीयभाषादेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं..।

प्रभु का विहार हो जहां जहां, सब प्राणी मैत्री भाव धरें।
सब जाति विरोधी जीव वहां, आपस में वैर हरें विचरें।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।2।।

ॐ ह्रीं सर्वजीवमैत्रीभावदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

जब श्रीविहार होता प्रभु का, औ समवसरण जहां राजे हैं।
षट्ऋतु के सब फल फलते हैं, सब फूल खिलें अति भासे हैं ।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।3।।

ॐ ह्रीं सर्वर्तुफलादिशोभिततरुपरिणामदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य:अर्घ्यं...।

दर्पण तलसम भूरत्नमयी, जहँ जहँ प्रभु विहरण करते हैं।
यह अतिशय सुरकृत मनहारी, भवि पूजत ही दुख हरते हैं।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।4।।

ॐ ह्रीं आदर्शतलप्रतिमारत्नमयीमहीदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य:अर्घ्यं...।

अनुकूल पवन है मन्द मन्द, सुरभित सुखकर जन मन हारी।
सब आधी व्याधी शोक टलें, स्पर्श पवन का हितकारी।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।5।।

ॐ ह्रीं सुगंधितविहरणमनुगतवायुत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य:अर्घ्यं..।

जहँ जहँ प्रभु का हो श्रीविहार, सब जन परमानन्दित होते।
परमानन्दामृत पी करके, मुनिगण भी कर्म पंक धोते।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।6।।

ॐ ह्रीं सर्वजनपरमानन्दत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

धूली कंटक आदिक विरहित, भूमी अति स्वच्छ सदा दिखती।
प्रभु के विहार के अतिशय से, दुर्भिक्ष मरी व्याधी टरती।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।7।।

ॐ ह्रीं वायुकुमारोपशमित धूलिकंटकादिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं..।

सुरभित गन्धोदक की वर्षा, भक्ती से मेघकुमार करें।
प्रभु का ही अतिशय पुण्य महा, जो पूजें भवदधि पार करें।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।8।।

ॐ ह्रीं मेघकुमारकृत गंधोदकवृष्टिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं..।

जहँ जहँ प्रभु चरणकमल धरते, तहँ तहँ शुभ स्वर्ण कमल खिलते ।
सुरकृत अतिशय को देख देख, जन-जन के हृदय कमल खिलते।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।9।।

ॐ ह्रीं चरणकमलतलरचितस्वर्णकमलदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

शाली आदिक सब धान्य भरित, खेती फल से झुक जाती है।
सुरकृत अतिशय से चहुँदिश में, सुन्दर पृथ्वी लहराती है।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।10।।

ॐ ह्रीं फलभारनम्रशालिदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

आकाश शरद् ऋतु के सदृश, सब दशों दिशा धूमादि रहित।
भक्ती से जन जन का मन भी, सब पाप पंक से हो विरहित।।

जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।11।।

ॐ ह्रीं शरत्कालवन्निर्मलगगनदिग्भागत्वदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

आवो आवो सब सुरगण मिल, आवो आवो जयकार करो।
जिनवर की अतिशय भक्ती कर, अब मोहराज पर वार करो।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।12।।

ॐ ह्रीं एतैतेति चतुर्णिकायामरपरापराह्वानदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

वर धर्मचक्र सर्वाण्हयक्ष, मस्तक पर धारण करते हैं।
प्रभु के आगे चलते जग में, ये धर्मचक्र शुभ करते हैं।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।13।।

ॐ ह्रीं धर्मचक्रचतुष्टयदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

कलश ध्वज छत्र चमर दर्पण, भृंगार ताल औ सुप्रतीक।
ये मंगलद्रव्य आठ इनको, देवी कर धारें मंगलीक।।
जो आतम निधि के इच्छुक हैं, वे इन अतिशय को ध्याते हैं।
इस हेतू हम अर्हत्प्रभु की, पूजा करके सुख पाते हैं।।14।।

ॐ ह्रीं अष्टमंगलद्रव्यदेवोपनीतातिशयसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

आठ प्रातिहार्य

—गीता छन्द —

वर प्रातिहार्य अशोक तरुवर, शोक जन मन को हरे।
गारुत्मणी के पत्र सुन्दर, पवन प्रेरित थरहरें।।
इस प्रातिहार्य समेत जिनवर, की करें हम अर्चना।
सब रोग शोक समूल हर हम, करें यम की तर्जना।।1।।

ॐ ह्रीं अशोकवृक्षमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

सुरगण करें सुरकल्पतरु के, पुष्प की वर्षा घनी।
अतिशय सुगंधित पुष्प पंक्ती, सर्व मन हरसावनी।।

इस प्रातिहार्य समेत जिनवर, की करें हम अर्चना।
सब रोग शोक समूल हर हम, करें यम की तर्जना।।2।।

ॐ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

प्रभु दिव्यध्वनि चउकोश तक, गम्भीर ध्वनि करती खिरे।
निर अक्षरी फिर भी असंख्यों, भव्य को तर्पित करे।।
इस प्रातिहार्य समेत जिनवर, की करें हम अर्चना।
सब रोग शोक समूल हर हम, करें यम की तर्जना।।3।।

ॐ ह्रीं दिव्यध्वनिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

चौंसठ चमर ढोरें अमर बहु, पुण्य संचय कर रहे।
ये चमर मानों कह रहे प्रभु, भक्त ऊरध गति लहें।।
इस प्रातिहार्य समेत जिनवर, की करें हम अर्चना।
सब रोग शोक समूल हर हम, करें यम की तर्जना।।4।।

ॐ ह्रीं चतु:षष्टिचामरमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

बहुरत्न संयुत सिंहपीठ, जिनेश जिस पर राजते।
जो भव्य पूजें नाथ को वे, आत्मज्योति प्रकाशते।।
इस प्रातिहार्य समेत जिनवर, की करें हम अर्चना।
सब रोग शोक समूल हर हम, करें यम की तर्जना।।5।।

ॐ ह्रीं सिंहासनमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

प्रभु देह कांती प्रभामंडल, कोटि सूर्य तिरस्करे।
भवि सात भव उसमें निरख जिन, विभव लख शिर नत करें।।
इस प्रातिहार्य समेत जिनवर, की करें हम अर्चना।
सब रोग शोक समूल हर हम, करें यम की तर्जना।।6।।

ॐ ह्रीं भामंडलमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

सुरदुंदुभी बजती विविध, भविलोक को हर्षित करे।
धुनि श्रवण कर जिन दर्श कर,जन पुण्य बहु अर्जित करें।।
इस प्रातिहार्य समेत जिनवर, की करें हम अर्चना।
सब रोग शोक समूल हर हम, करें यम की तर्जना।।7।।

ॐ ह्रीं सुरदुंदुभिमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

जिननाथ के मस्तक उपरि, त्रय छत्र सुन्दर फिर रहें।
त्रैलोक्य की प्रभुता प्रभू की, है यही सब कह रहे।।
इस प्रातिहार्य समेत जिनवर, की करें हम अर्चना।
सब रोग शोक समूल हर हम, करें यम की तर्जना।।8।।

ॐह्रीं छत्रत्रयमहाप्रातिहार्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

चार अनंत चतुष्टय

नाराच छंद-तीन लोक तीन काल की समस्त वस्तु को।
एक साथ जानता अनंत ज्ञान विश्व को।।
जो अनंत ज्ञान युक्त इन्द्र अर्चते जिन्हें।
पूजहूँ सदा उन्हें अनंत ज्ञान हेतु मैं।।1।।

ॐह्रीं अनंतज्ञानसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

लोक औ अलोक के समस्त ही पदार्थ को।
एक साथ देखता अनन्त दर्श सर्व को।।
जो अनन्त दर्शयुक्त इन्द्र अर्चते जिन्हें।
पूजहूँ सदा उन्हें अनन्त दर्श हेतु मैं।।2।।

ॐ ह्रीं अनंतदर्शनसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

बाधहीन जो अनन्त सौख्य भोगते सदा।
हो भले अनन्तकाल आवते न ह्यां कदा।।
वे अनन्त सौख्य युक्त इन्द्र अर्चते उन्हें।
पूजहूँ सदा तिन्हें अनन्त सौख्य हेतु मैं।।3।।

ॐ ह्रीं अनंतसौख्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

जो अनन्तवीर्यवान अंतराय को हनें।
तिष्ठते अनन्तकाल श्रम नहीं कभी उन्हें।।
वे अनन्त शक्तियुक्त इन्द्र अर्चते उन्हें।
पूजहूँ सदा तिन्हें अनन्त वीर्य हेतु मैं।।4।।

ॐ ह्रीं अनन्तवीर्यसहितार्हत्परमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

—पूर्णार्घ्य-शंभु छंद—

दश अतिशय जन्म समय से हों, दश केवलज्ञान उदय से हों।
देवोंकृत चौदह अतिशय हों, चौंतिस अतिशय सब मिलके हों।
वर प्रातिहार्य हैं आठ कहे, सु अनन्त चतुष्टय चार कहे।
इन छ्यालिस गुणयुत अर्हत को, हम पूजें वांछित सर्व लहें।।

ॐ ह्रीं षट्चत्वारिंशद् गुणसंयुक्तार्हत्परमेष्ठिभ्य: पूर्णार्घ्यं...।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

जाप्य-ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो नम:।

जयमाला

दोहा— श्री अरिहंत जिनेन्द्र का, धरूँ हृदय में ध्यान।
गाऊँ गुणमणिमालिका, हरूँ सकल अपध्यान।।1।।

—शंभु छंद—

जय जय प्रभु तीर्थंकर जिनवर, तुम समवसरण में राज रहे।
जय जय अर्हत् लक्ष्मी पाकर, निज आतम में ही आप रहे।।
जन्मत ही दश अतिशय होते, तन में न पसेव न मल आदी।
पय सम सित रुधिर सु समचतुष्क, संस्थान संहनन है आदी।।1।।

अतिशय सुरूप, सुरभित तनु है, शुभ लक्षण सहस आठ सोहें।
अतुलित बल प्रियहित वचन प्रभो, ये दश अतिशय जनमन मोहें।।
केवल रवि प्रगटित होते ही दश, अतिशय अद्भुत ही मानों।
चारों दिश इक इक योजन तक, सुभिक्ष रहे यह सरधानो।।2।।

हो गगन गमन, नहिं प्राणीबध, नहिं भोजन नहिं उपसर्ग तुम्हें।
चउमुख दीखे सब विद्यापति, नहिं छाया नहिं टिमकार तुम्हें।।
नहिं नख औ केश बढ़ें प्रभु के, ये दश अतिशय सुखकारी हैं।
सुरकृत चौदह अतिशय मनहर, जो भव्यों को हितकारी हैं।।3।।

सर्वार्धमागधीया भाषा, सब प्राणी मैत्री भाव धरें।
सब ऋतु के फल और फूल खिलें, दर्पणवत् भूमी लाभ धरें।।

अनुकूल सुगंधित पवन चले, सब जन मन परमानन्द भरें।
रजकंटक विरहित भूमि स्वच्छ, गंधोदक वृष्टी देव करें।।4।।

प्रभु पद तल कमल खिलें सुन्दर,शाली आदिक बहुधान्य फलें।
निर्मल आकाश दिशा निर्मल, सुरगण मिल जय जयकार करें।।
अरिहंत देव का श्रीविहार, वर धर्मचक्र चलता आगे।
वसुमंगल द्रव्य रहें आगे, यह विभव मिला जग के त्यागे।।5।।

तरुवर अशोक सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चौंसठ चमर कहें।
सिंहासन भामंडल सुरकृत, दुंदुभि छत्रत्रय शोभ रहें।।
ये प्रातिहार्य हैं आठ कहे, औ दर्शन ज्ञान सौख्य वीरज।
ये चार अनंत चतुष्टय हैं, सब मिलकर छ्यालिस गुण कीरत।।6।।

क्षुध तृषा जन्म मरणादि दोष, अठदश विरहित निर्दोष हुए।
चउ घाति घात नवलब्धि पाय, सर्वज्ञ प्रभू सुखपोष हुए।।
द्वादशगण के भवि असंख्यात, तुम धुनि सुन हर्षित होते हैं।
सम्यक्त्व सलिल को पाकर के भव भव के कलिमल धोते हैं।।7।।

मैं भी भव दु:ख से घबड़ाकर, अब आप शरण में आया हूँ।
सम्यक्त्व रतन नहिं लुट जावे, बस यही प्रार्थना लाया हूँ।।
संयम की हो पूर्ती भगवन्! औ मरण समाधीपूर्वक हो।
हो केवल ''ज्ञानमती'' सिद्धी, जो सर्व गुणों की पूरक हो।।8।।

दोहा— मोह अरी को हन हुए, त्रिभुवन पूजा योग्य।
नमूँ नमूँ अरिहंत को, पाऊँ सौख्य मनोज्ञ।।9।।

ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं श्री अर्हत्परमेष्ठिभ्य: जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

शेरछन्द —जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवो निधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य ज्ञानमति से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंतसौख्य भरेंगे।।1।।

।। इत्याशीर्वाद: ।।

(पूजा नं.-3)
सिद्ध पूजा

— स्थापना-गीता छन्द —

श्री सिद्ध परमेष्ठी अनन्तानन्त त्रैकालिक कहे।
त्रिभुवन शिखर पर राजते, वह सासते स्थिर रहें।।
वे कर्म आठों नाश कर, गुण आठ धर कृतकृत्य हैं।
कर थापना मैं पूजहूँ, उनकों नमें नित भव्य हैं।।1।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ:ठ: स्थापनं।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं-पंचचामर छंद

अनादि से तृषा लगी न नीर से बुझी कभी।
अत: प्रभो त्रिधार देय नीर से जजूँ अभी।।
अनन्त सिद्धचक्र की सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत सिद्धि अंगना वरूँ।।1।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं..।

अनंत काल राग आग दाह में जला दिया।
उसी कि शांति हेतु गंध लाय चर्ण चर्चिया।।
अनन्त सिद्धचक्र की सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत सिद्धि अंगना वरूँ।।2।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं.।

क्षणेक सुक्ख हेतु मैं नमा सभी कुदेव को।
अखंड सौख्य हेतु शालि से जजूँ सुदेव को।।

अनन्त सिद्धचक्र की सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत सिद्धि अंगना वरूँ।।3।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं....।

सुगन्ध पुष्पहार ले जजूँ समस्त सिद्ध को।
रतीश मल्ल जीत के लहूँ निजात्म सिद्धि को।।
अनन्त सिद्धचक्र की सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत सिद्धि अंगना वरूँ।।4।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं...।

पियूष पिंड के समान मोदकादि लेय के।
निजात्म सौख्य हेतु मैं जजूँ प्रमाद खोय के।।
अनन्त सिद्धचक्र की सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत सिद्धि अंगना वरूँ।।5।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं...।

सुवर्ण दीप लेय नाथ पाद अर्चना करूँ।
समस्त मोह ध्वांत नाश ज्ञान ज्योति को भरूँ।।
अनन्त सिद्धचक्र की सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत सिद्धि अंगना वरूँ।।6।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: मोहांधकारविनाशनाय दीपं....।

सुगन्ध धूप लेय अग्नि पात्र में प्रजालिये।
कलंक पंक ज्वाल के निजात्म को उजालिये।।
अनन्त सिद्धचक्र की सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत सिद्धि अंगना वरूँ।।7।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अष्टकर्मदहनाय धूपं....।

अनार सेब संतरादि सत्फलों को लाइये।
स्व तीन रत्न हेतु नाथ पाद में चढ़ाइये।।

अनन्त सिद्धचक्र की, सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत, सिद्धि अंगना वरूँ।।8।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: मोक्षफलप्राप्तये फलं....।

सुरत्न को मिलाय अर्घ, लेय थाल में भरे।
अनन्त शक्ति हेतु आप, चर्ण अर्चना करे।।
अनन्त सिद्धचक्र की, सदा उपासना करूँ।
स्व जन्म मृत्यु मल्ल जीत, सिद्धि अंगना वरूँ।।9।।

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं.....।

—दोहा—

प्रभु पद में धारा करूँ, चउसँघ शांती हेत।।
शांतीधारा जगत में, आत्यंतिक सुख हेतु।।10।।

शान्तये शांतिधारा।

चंपक हरसिंगार बहु, पुष्प सुगन्धित सार।
पुष्पांजलि से पूजते, होवे सौख्य अपार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलि:।

अथ प्रत्येक अर्घ्य (8 अर्घ्य)

—दोहा—

'सिद्ध' मात्र दो शब्द के उच्चारण से जान।
सर्व कार्य की सिद्धि हो क्रमश: पद निर्वाण।।1।।

इति मंडलस्योपरि द्वितीयदले पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

—रोला छन्द—

मोह कर्म को नाश, समकित शुद्ध लह्यो है।
लोक शिखर अधिवास, शाश्वत काल कियो है॥
जल गंधादिक लेय, पूजूँ अर्घ चढ़ा के।
भव भव भ्रमण विनाश, बसूँ मोक्षपुर जाके।।1।।

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मरहितसम्यक्त्वगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

ज्ञानावरण विघात, ज्ञान अनन्त लिया है।
लोकालोक समस्त, युगपत जान लिया है।।
जल गंधादिक लेय, पूजूँ अर्घ चढ़ा के।
भव भव भ्रमण विनाश, बसूँ मोक्षपुर जाके।।2।।

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणकर्मरहितानंतज्ञानगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

दर्शन के आवर्ण, नवविध सर्व विनाशे।
इक क्षण में सब विश्व, देखें निजगुण भासें।।
जल गंधादिक लेय, पूजूँ अर्घ चढ़ा के।
भव भव भ्रमण विनाश, बसूँ मोक्षपुर जाके।।3।।

ॐ ह्रीं दर्शनावरणकर्मरहितानंतदर्शनगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं..।

अंतराय को चूर, शक्ति अनन्ती पायी।
करो विघ्न घन दूर, मैं पूजूँ हरसायी।।
जल गंधादिक लेय, पूजूँ अर्घ चढ़ा के।
भव भव भ्रमण विनाश, बसूँ मोक्षपुर जाके।।4।।

ॐ ह्रीं अंतरायकर्मरहितानंतवीर्यगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

नाम कर्म को नाश, देहादिक से छूटें।
गुण सूक्ष्मत्व विकास, निज आतम सुख लूटें।।
जल गंधादिक लेय, पूजूँ अर्घ चढ़ा के।
भव भव भ्रमण विनाश, बसूँ मोक्षपुर जाके।।5।।

ॐ ह्रीं नामकर्मरहितसूक्ष्मत्वगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

आयू कर्म विनाश, पूर्ण स्वतन्त्र भये हैं।
गुण अवगाहन पाय, जग से मुक्त भये हैं।।
जल गंधादिक लेय, पूजूँ अर्घ चढ़ा के।
भव भव भ्रमण विनाश, बसूँ मोक्षपुर जाके।।6।।

ॐ ह्रीं आयुकर्मरहितावगाहनगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

गोत्र कर्म कर दूर, अगुरुलघूगुण पायो।
गणधर मुनिगण इन्द्र, तुमको शीश नमायो।।
जल गंधादिक लेय, पूजूँ अर्घ चढ़ा के।
भव भव भ्रमण विनाश, बसूँ मोक्षपुर जाके।।7।।

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मरहितागुरुलघुगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

किया वेदनी घात, निज में तृप्त हुए हैं।
अव्याबाध अनन्त, सुख में लीन हुए हैं।।
जल गंधादिक लेय, पूजूँ अर्घ चढ़ा के।
भव भव भ्रमण विनाश, बसूँ मोक्षपुर जाके।।8।।

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मरहिताव्याबाधसुखसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

—पूर्णार्घ्य—

अष्ट करम कर चूर, आठ प्रमुख गुण पायो।
अष्टम पृथ्वी शीश, जाकर थिरता पायो।।
भूत भविष्यत काल, वर्तमान के सिद्धा।
पूरण अर्घ चढ़ाय, पूजूँ विश्व प्रसिद्धा।।9।।

ॐ ह्रीं अष्टकर्मरहिताष्टगुणसहितसिद्धपरमेष्ठिभ्य: पूर्णार्घ्यं....।

शान्तये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो नम:।**

जयमाला

—दोहा—

पुद्गल के संबंध से, हीन स्वयं स्वाधीन।
नमूँ नमूँ सब सिद्ध को, तिन पद भक्ति अधीन।।1।।

चाल-हे दीन...............

जय जय अनंत सिद्ध वृंद मुक्ति के कंता।
जय जय अनंत भव्यवृंद सिद्धि करंता।

जय जय त्रिलोक अग्रभाग ऊर्ध्व राजते।
जय नाथ! आप में हि आप नित्य राजते।।1।।

ज्ञानावरण के पाँच भेद को विनाशिया।
नव भेद दर्शनावरण को सर्व नाशिया।।
दो वेदनीय आठ बीस मोहनी हने।
चउ आयु नामकर्म सब तिरानबे हने।।2।।

दो गोत्र अंतराय पाँच सर्व नाशिया।
सब इक सौ अड़तालीस कर्म प्रकृति नाशिया।।
ये आठ कर्मनाश मुख्य आठ गुण लिये।
फिर भी अनंतानंत सुगुणवृंद भर लिये।।3।।

इन ढाई द्वीप मध्य से ही मुक्ति पद मिले।
अन्यत्र तीन लोक में ना पूर्ण सुख खिले।।
सब ही मनुष्य मुक्त होते कर्मभूमि से।
अन्यत्र से भी मुक्त हों उपसर्ग निमित्त से।।4।।

पर्वत नदी समुद्र गुफा कंदराओं से।
वन भोगभूमि कर्मभू और वेदिकाओं से।।
जो मुक्त हुए हो रहे औ होयेंगे आगे।
उन सर्व सिद्ध को नमूँ मैं शीश झुका के।।5।।

नर लोक पैंतालीस लाख योजनों कहा।
उतना प्रमाण सिद्ध लोक का भी है रहा।।
अणुमात्र भी जगह न जहाँ मुक्त ना हुए।
अतएव सिद्धलोक सिद्धगण से भर रहे।।6।।

उत्कृष्ट सवा पांच सौ धनु का प्रमाण है।
जघन्य साढ़े तीन हाथ का ही मान है।।
मध्यम अनेक भेद से अवगाहना कही।
उन सर्व सिद्ध को नमूँ वे सौख्य की मही।।7।।

निज आत्मजन्य निराबाध सौख्य भोगते।
निज ज्ञान से ही लोकालोक को विलोकते।।
निज में सदैव तृप्त सदाकाल रहेंगे।
आगे कभी भी वे न पुनर्जन्म लहेंगे।।8।।

उन सर्व सिद्ध की मैं सदा वंदना करूँ।
सर्वार्थसिद्धि हेतु सदा अर्चना करूँ।।
तुम नाममात्र भी निमित्त सर्व सिद्धि में।
अतएव नमूँ बार-बार सर्व सिद्ध मैं।।9।।

—दोहा—

भूत भविष्यत संप्रती, तीन काल के सिद्ध।
उनकी पूजा जो करें, लहें 'ज्ञानमति' निद्ध।।10।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसर्वसिद्धपरमेष्ठिभ्य: जयमाला पूर्णार्घ्यं....।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

—शेरछन्द—

जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवो निधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमति' से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंतसौख्य भरेंगे।।1।।

।। इत्याशीर्वाद: ।।

(पूजा नं.-4)

आचार्य पूजा

—स्थापना-गीता छंद—

जो स्वयं पंचाचार पालें, अन्य से पलवावते।
छत्तीस गुण धारें सदा, निज आत्मा को ध्यावते।।
ऐसे परम आचार्यवर, भवसिंधु से भवि तारते।
इस हेतु उनकी अर्चना, हित हम हृदय में धारते।।1।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्रीआचार्यपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्रीआचार्यपरमेष्ठिसमूह!अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्रीआचार्यपरमेष्ठिसमूह!अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं-भुजंगप्रयात छंद

पयोराशि का नीर निर्मल भराऊँ।
गुरू के चरण तीन धारा कराऊँ।।
जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।1।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं....।

सुगंधीत चंदन लिये भर कटोरी।
जगत्तापहर चर्चहूँ हाथ जोरी।।
जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।2।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं...।

धुले श्वेत अक्षत लिये थाल भर के।
धरूँ पुंज तुम पास बहु आश धर के ।।

जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।3।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं...।

जुही केतकी पुष्प की माल लाऊँ।
सभी व्याधि हर आप चरणों चढ़ाऊँ।।
जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।4।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं.....।

सरस मिष्ट पक्वान्न अमृत सदृश ले।
परम तृप्ति हेतू चढ़ाऊँ तुम्हें मैं।।
जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।5।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं.....।

शिखा दीप की जगमगाती भली है।
जजत ही तुम्हें ज्ञान ज्योती जली है।।
जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।6।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: मोहान्धकारविनाशनाय दीपं......।

अगुरु धूप खेते उड़े धूम्र नभ में।
दुरित कर्म जलते गुरू भक्ति वश तें।।
जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।7।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: अष्टकर्मदहनाय धूपं...।

अनन्नास नींबू बिजौरा लिये हैं।
तुम्हें अर्पते सर्व वांछित लिये हैं।।
जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।8।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: मोक्षफलप्राप्तये फलं.....।

लिये थाल में अर्घ्य है भक्ति भारी।
गुरू अर्चना है सदा सौख्यकारी।।
जजूँ नित्य आचार्य के पाद को मैं।
तरूँ शीघ्र संसार वाराशि को मैं।।9।।

ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं श्री आचार्यपरमेष्ठिभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं...।

—दोहा—

गुरु पद में धारा करूँ, चउसंघ शांती हेत।
शांतीधारा जगत में, आत्यंतिक सुख हेतु।।10।।

शान्तये शांतिधारा।

चंपक हरसिंगार बहु, पुष्प सुगंधित सार।
पुष्पांजलि से पूजते, होवे सौख्य अपार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलि:।

अथ प्रत्येक अर्घ्य (36 अर्घ्य)

—सोरठा—

स्वयं आचारें नित्य, पंचाचार इसीलिये।
कहलावें आचार्य, पर को आचरवावते।।1।।

इति मंडलस्योपरि तृतीय दले पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

—दोहा—

आठ भेद संयुत धरे, ज्ञानाचार महान।
उन आचार्य प्रधान को, पूजूँ श्रद्धा ठान।।1।।

ॐ ह्रीं ज्ञानाचारगुणसहित आचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

आठ अंग युत मोक्ष का, मूल दर्शनाचार।
इस गुणयुत आचार्य को, जजूँ भक्ति उरधार।।2।।

ॐ ह्रीं दर्शनाचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं.....।

तेरह भेद समेत है, शुभ चारित्राचार।
इस गुण भूषित सूरि को, प्रणमूँ बारंबार।।3।।

ॐ ह्रीं चारित्राचारगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

नाना विध तप को तपें, आतमशुद्धी हेतु।
तप आचारी सूरि को, पूजूँ भक्ति समेत।।4।।

ॐ ह्रीं तपाचार गुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं.....।

पाँच भेद संयुत कहा, वीर्याचार विशेष।
इस गुण को जो धारते, पूजूँ उन्हें हमेश।।5।।

ॐ ह्रीं वीर्याचार गुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं.....।

—अडिल्ल छंद—

क्रोध निमित्त मिलें, फिर भी समता गहें।
अंतरंग में क्षमा धार, सब कुछ सहें।।
ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूँ, कृपा तुम पायके।।6।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमागुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

मृदुता गुण को लहें, मान शठ मार के।
भवि जन शरणा गहें, जगत से हार के।।
ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।7।।

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

माया दुर्गति सखी, त्याग आर्जव गहें।
मन वच तन को सरल करें, शिवसुख लहें।।
ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।8।।

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

अप्रिय कटुक कठोर, असत्य निवारते।
दशविध पालें सत्य, परम सुख पावते।।

ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।9।।

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

लोभ पाप का मूल, दूर से छोड़ते।
परम शौच धर शिव से, नाता जोड़ते।।
ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।10।।

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

जीव दया धर इन्द्रिय, का निग्रह करें।
द्वादशविध संयम धर, वे भवदधि तरें।।
ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।11।।

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

पर से इच्छा रोकें, उत्तम तप करें।
निज आत्मा को निर्मल, कर शिवतिय वरें।।
ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।12।।

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

उत्तम त्याग करें, रत्नत्रय दान दें।
भव्यों को चउविध दें, दान उबारते।।
ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।13।।

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

किंचित् भी नहिं मम, यह आकिंचन्य है।
इस गुण से त्रिभुवनपति, होते धन्य हैं।।

ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।14।।

ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

ब्रह्मरूप निज आतम, में चर्या करें।
त्रिभुवन पूजित ब्रह्मचर्य, गुण को धरें।।
ऐसे गुरु आचार्य, जजूँ मन लायके।
रत्नत्रय निधि लहूं, कृपा तुम पायके।।15।।

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

—नरेंद्र छंद—

चतुराहार त्याग करके मुनि, बहु उपवास करे हैं।
बेलादिक से छह महिने तक, जल भी नहीं ग्रहे हैं।।
अनशन तप से भूषित वे गुरु, कर्मेंधन को दहते।
उनकी भक्ती पूजन करके, अतुल शक्ति हम चहते।।16।।

ॐ ह्रीं अनशनतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

बत्तिस ग्रास पूर्ण भोजन में, एक ग्रास कम करते।
एक ग्रास लें एक सिक्थ[1] लें, जो भी हो कम करते।।
अवमौदर्य करें जो सूरी, सभी प्रमाद नशावें।
उनकी भक्ती पूजन करके, हम आलस्य भगावें।।17।।

ॐ ह्रीं अवमौदर्यतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

चर्या समय वस्तु या घर का, नियम अटपटा करते।
यदि नहिं मिले रहें उपवासी, रंच खेद नहिं करते।।
वृत्तपरीसंख्या इस तप को, करके कर्म प्रजालें।
उनकी भक्ती पूजा करके, हम निज ज्योति जगालें।।18।।

ॐ ह्रीं वृत्तपरिसंख्यानतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

दूध दही घी नमक मधुर रस, सब त्यागें या कुछ को।
रसपरित्याग करन से प्रगटें, रस ऋद्धी भी उनको।।

1. चावल

फिर भी निज आतम अनुभव रस, अमृत स्वाद चखे हैं।
उनकी भक्ती पूजा करके, हम निज आत्म लखे हैं।।19।।

ॐ ह्रीं रसपरित्यागतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

आर्त रौद्र दुर्ध्यान छोड़कर, धर्मध्यान करते हैं।
अत: शुद्ध एकांत जगह, स्थान शयन करते हैं।।
इस विविक्त शयनासन तप से, सब विकल्प परिहारें।
उनकी भक्ती पूजा करके, निर्विकल्प पद धारें।।20।।

ॐ ह्रीं विविक्तशयनासनतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

नानाविध से आसन करते, तन में क्लेश बढ़े हैं।
आतापन आदिक तप तपते, निश्चल होय खड़े हैं।।
सुखियापन तज कायक्लेश तप, करके कर्म झड़ावें।
उनकी पूजा भक्ती करके, हम निज शक्ति बढ़ावें।।21।।

ॐ ह्रीं कायक्लेशतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं.....।

अतिक्रम व्यतिक्रम अतीचार, औ अनाचार व्रत में हों।
अंतरंग तप प्रायश्चित से, शोधन सब व्रत के हों।।
गुरु के पास पाप शोधन कर, आतम शुद्ध करे हैं।
उनकी भक्ती पूजा करके, हम सब पाप हरें हैं।।22।।

ॐ ह्रीं प्रायश्चित्ततपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं.....।

दर्शन ज्ञान चरित तप का जो, नितप्रति विनय करे हैं।
नित पंचम उपचार विनय से, गुरु में राग धरे हैं।।
मोक्ष महल का द्वार खोलते, वे भविजन सुविधा से।
उनकी भक्ती पूजा करके, निजपद पाऊँ तासे।।23।।

ॐ ह्रीं विनयतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

सूरी पाठक साधूगण की, सेवा आदि करे हैं।
सर्वशक्ति से संयतजन की, वैयावृत्ति करे हैं।।

तीर्थंकर समपुण्य प्रकृति भी, संपादन कर लेते।
उनकी भक्ती पूजा करके, भवजल को जल देते।।24।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्तितपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

अर्हत् भाषित सूत्र ग्रन्थ का, नित पठनादिक करते।
वाचन पृच्छन अनुप्रेक्षण, आम्नाय देशना करते।।
अंतस्तप स्वाध्याय पंचविध, करें करावें रुचि से।
उनकी भक्ती पूजा करके, ज्ञान बढ़ावें मुद से।।25।।

ॐ ह्रीं स्वाध्यायतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

अंतर बाहर उपाधि त्यागकर, तप व्युत्सर्ग धरे हैं।
आतमलीन सहज वैरागी, मन का मैल हरे हैं।।
इन तपधारी संयत जन को, सुरपति शीश नमावें।
उनकी भक्ती पूजा करके, संयम निधि हम पावें।।26।।

ॐ ह्रीं व्युत्सर्गतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

अशुभ ध्यान तज धर्मध्यान धर, निज परिणाम संभारें ।
शुक्लध्यान के हेतु निरंतर, ध्यानाभ्यास विचारें।।
चिच्चैतन्य सुधारस पीकर, अजरामर पद पावें।
उनकी भक्ती पूजा कर हम, सब दुर्ध्यान नशावें।।27।।

ॐ ह्रीं ध्यानतपोगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

—रोला छन्द—

जो इन्द्रिय के अवश, आवश्यक उन किरिया।
षट् भेदों में आदि, समता नामक चर्या।।
रागद्वेष में साम्य, सामायिक त्रय काले।
उनको अर्घ चढ़ाय, मैं पूजूँ त्रय काले।।28।।

ॐ ह्रीं समतावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

तीर्थंकर चौबीस, उनकी नामादिक से।
करते स्तवन विनीत, स्तव आवश्यक ये।।
जो मुनि करें सदैव, अतिशय पुण्य कमावें।
उनको अर्घ चढ़ाय, हम भी पाप नशावें।।29।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिस्तवावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

अर्हत् सिद्ध मुनीश, या उनकी हो प्रतिमा।
किन्हीं एक का नित्य, रुचिधर वंदन करना।।
आवश्यक सुखकार, वंदन नित्य करें जो।
उनको अर्घ चढ़ाय, पाऊँ लोक शिखर को।।30।।

ॐ ह्रीं वंदनावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

व्रत में हों जो दोष, प्रतिक्रमण से शोधें।
दैनिक रात्रिक आदि, विधि से मल को धोते।।
भूतकाल के दोष, जो मुनि दूर करे हैं।
उनको अर्घ चढ़ाय, हम निज दोष हरे हैं।।31।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं..।

भाविदोष कर त्याग, प्रत्याख्यान धरें जो।
कर अहार तत्काल, चतुराहार तजें जो।।
अथवा बहुविध वस्तु, या कुछ त्याग करे हैं।
उनको अर्घ चढ़ाय, हम निज पाप हरे हैं।।32।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

तन से ममत निवार, कायोत्सर्ग करें जो।
क्षण मुहूर्त या वर्ष, तक भी ध्यान धरें जो।।
वे आचार्य सदैव, भविजन को सुखदाता।
उनको अर्घ चढ़ाय, मैं पूजूँ नत माथा।।33।।

ॐ ह्रीं कायोत्सर्गावश्यकगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

—सखी छंद—

त्रयगुप्ती में मनगुप्ती, जो अधिक कठिन से निभती।
मनरोध करें शुभ माहीं, उन पूजूँ अर्घ चढ़ाहीं।।34।।

ॐ ह्रीं मनोगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

बहि अंतर जल्प निवारें,अथवा नहिं अशुभ उचारें।
वचि गुप्ती धर सूरीश्वर, मैं पूजूँ धर्मरुचीधर।।35।।

ॐ ह्रीं वचोगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

तन सुस्थिर ध्यान धरे जो,या अशुभ क्रिया न करें जो।
वे कायगुप्ति ऋषि पालें, उन पूजत हम भव टालें।।36।।

ॐ ह्रीं कायगुप्तिगुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं....।

—पूर्णार्घ्य-शंभु छंद—

जो पंचाचार धर्म दशविध, द्वादशविध तप को नित करते।
षट् आवश्यक त्रयगुप्ति सहित,छत्तिस गुण को निज में धरते।।
वे स्वयं तरें तारें पर को, आचार्य परम गुरु माने हैं।
हम उनकी पूजा कर करके, निज आतम को पहिचानें हैं।।37।।

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशत्गुणसहिताचार्यपरमेष्ठिभ्य: पूर्णार्घ्यं....।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो नम:।**

जयमाला

—दोहा—

भववारिधि में भव्य के, कर्णधार आचार्य।
गाऊँ तुम गुणमालिका, होवो मम आधार्य।।1।।

—स्रग्विणी छंद—

मैं नमूँ मैं नमूँ मैं नमूँ सूरि को।
पाप संताप मेरा सबे दूर हो।।

नाथ तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।1।।

शिष्य का आप संग्रह करें चाव से।
नित्य उनपे अनुग्रह करें भाव से।।
दोष लख आप निग्रह करें युक्ति से।
दण्ड दे शुद्ध करते निजी शक्ति से।।2।।

मेरुसम धीर गम्भीर हो सिन्धु सम।
सूर्य सम तेजधृत् सौम्य हो चन्द्र सम।।
मातृवत् रक्षते पितृवत् पालते।
धर्म उपदेश दे भव्य अघ टालते।।3।।

कृष्ण नीलादि लेश्या नहीं आप में।
पीत पद्मादि लेश्या रहें पास में।।
देश कुल जाति से शुद्ध हो श्रेष्ठ हो।
चार विध संघ स्वामी सदा इष्ट हो।।4।।

जन्म व्याधी हरण आप ही वैद्य हो।
कष्ट उपसर्ग से आप नहिं भेद्य हो।।
सर्व साधूगणों से सदाराध्य हो।
इन्द्रशत वंद्य भविवृंद आराध्य हो।।5।।

मूलगुण और उत्तर गुणों को धरो।
सर्व परिषह सहो मोक्ष में दृग धरो।।
नग्न मुद्रा यथाजात गुरुवर्य जी।
वस्त्र श्रृंगार विरहित धरमधुर्य जी।।6।।

रत्नत्रय युक्त फिर भी अकिंचन्य हो।
मोहग्रन्थी रहित आप निर्ग्रंथ हो।
हो कृपा सिन्धु आनन्द भंडार हो।
कर्मवन दग्ध करने को अंगार हो।।7।।

ब्रह्मचारी रहो फिर भी तुम पास में।
सर्वदा है तपस्या रमा साथ में।।
ऋद्धियाँ सिद्धियाँ तुम चरण चूमतीं।
मुक्ति लक्ष्मी सदा पास में घूमती।।8।।

जो तुम्हारे चरण की करें अर्चना।
फेर होवे कभी भी उन्हें जनम ना।।
नाथ! मैं भी करूँ भक्ति इस हेतु से।
हे गुरो! अब छुड़ावो जगत् क्लेश से।।9।।

—घत्ता—

सूरीवर गुणगण,अगणित गुणमणि, जो भविजन शिर पर धरते।
वे दुर्गति परिहर, सुगति रमावर, केवल 'ज्ञानमती' वरते।।10।।

ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं श्रीआचार्यपरमेष्ठिभ्य: जयमाला पूर्णार्घ्यं....।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

—*शेरछन्द*—

जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवो निधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमति' से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंतसौख्य भरेंगे।।1।।

।। इत्याशीर्वाद: ।।

(पूजा नं.-5)

श्री उपाध्याय पूजा

—स्थापना-गीता छंद—

जो अंग ग्यारह पूर्व चौदह, धारते निज बुद्धि में।
पढ़ते पढ़ाते या उन्हें, जो शास्त्र हैं तत्काल में।।
वे गुरू पाठक मोक्षपथ, दर्शक उन्हीं की वंदना।
आह्वान विधि करके यहाँ पर, मैं करूँ नित अर्चना।।1।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं-अडिल्ल छंद-

रेवानदि को नीर, कनकझारी भरूँ।
मुनिपद धारा देय, सकल व्याधी हरूँ।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेद विज्ञान, लहूँ गुण गायके।।1।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं....।

अष्टगंध सौगंध, घिसाकर ले लिया।
मुनि चरणाम्बुज पूजत, ताप शमन किया।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेदविज्ञान, लहूँ गुण गायके।।2।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: संसारतापविनाशनाय चंदनं....।

मुक्ताफल सम अक्षत, धोकर लाइया।
पाठक मुनि के सम्मुख, पुंज चढ़ाइया।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेदविज्ञान, लहूँ गुण गायके।।3।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं..।

मौलसिरी मचकुंद, चमेली आदि ले।
मदनजयी ऋषिराज, जजूँ कुसुमादि ले।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेदविज्ञान, लहूँ गुण गायके।।4।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं....।

बरफी पेड़ा पूरणपोली चरु लिये।
मुनि पद पंकज पूजा कर निज सुख लिये।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेदविज्ञान, लहूँ गुण गायके।।5।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं..।

मणि दीपक में घृत भर, दीप जलाइया।
मोह तिमिर को नाश, ज्ञान प्रगटाइया।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेदविज्ञान, लहूँ गुण गायके।।6।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: मोहान्धकारविनाशनाय दीपं.....।

कृष्णागरू वरधूप, अग्नि में खेइया।
कर्म अष्ट कर दग्ध, निजातम सेइया।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेदविज्ञान, लहूँ गुण गायके।।7।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अष्टकर्मदहनाय धूपं..।

एला केला काजू किसमिस थाल में।
तुम पद अर्चूं नित्य नमाकर भाल मैं।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेदविज्ञान, लहूँ गुण गायके।।8।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: मोक्षफलप्राप्तये फलं.।

अष्ट द्रव्य से अर्घ, बनाकर ले लिया।
क्षायिक समकित हेतु, चरण अर्पण किया।।
उपाध्याय गुरुदेव, जजूँ मन लायके।
परमभेदविज्ञान, लहूँ गुण गायके।।9।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्री उपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं.।

—दोहा—

गुरु पद में धारा करूँ, चउसंघ शांती हेत।
शांतीधारा जगत में, आत्यंतिक सुख हेत।।10।।

शान्तये शांतिधारा।

चंपक हरसिंगार बहु, पुष्प सुगन्धित सार।
पुष्पांजलि से पूजते, होवे सौख्य अपार।।11।।

दिव्य पुष्पांजलि:।

अथ प्रत्येक अर्घ (25 अर्घ्य)

—सोरठा—

स्वानुभूति से आप, निज आतम अनुभव करें।
निश्चय समकित हेतु, मैं तुम पद पूजा करूँ।।1।।

इति मंडलस्योपरिचतुर्थदले पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

—शंभु छंद—

ग्यारह अंगों में प्रथम कहा है, आचारांग साधुओं का।
कैसे आचरण करे कैसे, बैठें इत्यादिक प्रश्नों का।।

तुम यत्नाचार प्रवृत्ति करो, इस विधि मुनिचर्या जो वर्णे।
इस अंगज्ञान युत उपाध्याय को अर्घ चढ़ाऊँ नत चर्णे।।1।।
ॐ ह्रीं आचारांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

व्यवहार धर्म को क्रिया कहे, स्वसमय परसमय निरूपे हैं।
वह अंग सूत्रकृत नाम धरे, उसको जो पढ़े प्ररूपें हैं।।
उन उपाध्याय को नित्य जजूँ, वे भ्रमतम हरने वाले हैं।
शुद्धात्मरूप आतम अनुभव, को प्रगटित करने वाले हैं।।2।।
ॐ ह्रीं सूत्रकृतांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

इक जीव एक चैतन्यरूप, दो रूप ज्ञान दर्शनयुत है।
एकेक अधिक स्थानों से, स्थान अंग नित वर्णत है।।
इस अंग ज्ञान को उपदेशें, वे उपाध्याय शिवपथ दाता।
मैं उनको पूजूँ भक्ती से, वे होवें भव दुख से त्राता।।3।।
ॐ ह्रीं स्थानांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं..।

जो द्रव्य क्षेत्र औ काल भाव, इनकी सदृशता कहता है।
वह समवायांग कहा निज का, अज्ञान मोह सब हरता है।।
जो पढ़ें इसे फिर निज आतम, अनुभव अमृत रस पीते हैं।
उन उपाध्याय को नित्य जजूँ, वे कर्म अरी को जीते हैं।।4।।
ॐ ह्रीं समवायांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

है जीव नहीं या इत्यादिक, सो साठ हजार सुप्रश्नों का।
उत्तर देता है वह व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग पंचम रहता।।
इस अंगज्ञान को जो धारें, वे उपाध्याय गुरु होते हैं।
मैं पूजूँ अर्घ चढ़ा करके, वे कर्म कालिमा धोते हैं।।5।।
ॐ ह्रीं व्याख्याप्रज्ञप्तिअंगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

धर्मोपदेश तीर्थंकर का,जिसमें हैं बहुत कथायें भी।
गणधर देवों के संशय को, जो दूर करें मन भायें भी।।
वह ज्ञातृधर्मकथनांग श्रेष्ठ, उसको जो पढ़ें पढ़ावें भी।
उन गुरु को शीश नमा करके, हम नितप्रति अर्घ चढ़ावें भी।।6।।
ॐ ह्रीं ज्ञातृधर्मकथांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

है उपासकाध्ययनांग कहा, जिसमें दर्शन आदिक प्रतिमा।
वरणी है ग्यारह भेदरूप, वह कहता श्रावक गुण गरिमा।।
इसके ज्ञाता मुनिवर नित ही, श्रावक का धर्म बताते हैं।
उनको हम अर्घ चढ़ा करके, भव भव दुख दूर भगाते हैं।।7।।
ॐ ह्रीं उपासकाध्ययनांगधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

एकेक तीर्थंकर के तीरथ में, नानाविध उपसर्गों को।
सहकर करते निर्वाण प्राप्त, दश दश मुनि मैं वंदूँ उनको।।
उन अंतकृती केवलियों का, जो विस्तृत वर्णन करता है।
उस अंगज्ञान धारी गुरु का, अर्चन ही सब दुख हरता है।।8।।
ॐ ह्रीं अंतकृद्दशांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

प्रत्येक तीर्थंकर के तीरथ में, दारुण उपसर्गों को सहकर।
जन्में हैं पांच अनुत्तर में, दश दश मुनि अतिशय पा पाकर।।
वह अनुत्तरोपपादिक दशांग, जिनमें इन सबका वर्णन है।
इस अंगज्ञानधारी ऋषि को, मेरा भी शत शत वंदन है।।9।।
ॐ ह्रीं अनुत्तरोपपादिकदशांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

आक्षेपिणि विक्षेपिणी कथा, संवेदिनि औ निर्वेदिनि का।
जिसमें वर्णन है किया गया, इन चार प्रकार कथाओं का।।
वह अंग प्रश्नव्याकरण नाम, उसका जो नित अभ्यास करें।
उस मुनि को अर्घ चढ़ा करके, हम क्रम से यम का त्रास हरें।।10।।
ॐ ह्रीं प्रश्नव्याकरणांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

जो कर्म प्रकृतियाँ पुण्य पाप,उनका फल कैसे क्या मिलता?
इन सबका वर्णन जिसमें हो, वह अंग विपाक सूत्र रहता।।
इस अंग ज्ञान को जो धारें, वे ग्यारह अंग ज्ञानधर हैं।
उन उपाध्याय को मैं अर्चूं, वे तारण तरण ऋषीश्वर हैं।।11।।
ॐ ह्रीं विपाकसूत्रांगज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

—कुसुमलता छंद—

चौदह पूर्वों में पहला है, उत्पादपूर्व जग मान्य महान।
जो उत्पाद और व्यय ध्रुव का, छहों द्रव्य में करे बखान।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।12।।

ॐ ह्रीं उत्पादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

जो अग्रायणीय पूरब है, नय दुर्नय का करे विचार।
तत्त्व द्रव्य के परीमाण, का वर्णन करे सकल सुखकार।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।13।।

ॐ ह्रीं अग्रायणीयपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

आत्मवीर्य परवीर्य आदि का, वर्णन करे बहुत विधसार।
वीर्यानुप्रवाद पूरब सो, श्री सर्वज्ञ कथित सुखकार।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।14।।

ॐ ह्रीं वीर्यानुप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

अस्ति नास्ति इत्यादि सप्त, भंगी का वर्णन करे महान।
सभी वस्तु हैं स्वपर चतुष्टय, से अस्ती नास्ती गुणवान।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।15।।

ॐ ह्रीं अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

जीवादिक हैं अनादि अनिधन, द्रव्यार्थिकनय करे बखान।
ज्ञानवाद में सादि सांत भी, पर्यायार्थिक कहे सुजान।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।16।।

ॐ ह्रीं ज्ञानप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

वचनगुप्ति औ द्वादशभाषा, वचन प्रयोग वचन संस्कार।
सत्य प्रवाद पूर्व कहता है, सत्य असत्य वचन परकार।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।17।।

ॐ ह्रीं सत्यप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

जीव विज्ञ विष्णू भोक्ता है, शुद्ध बुद्ध चिद्रूप महान।
कर्मों का कर्त्ता अशुद्ध भी, आत्मवाद नित करे बखान।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।18।।

ॐ ह्रीं आत्मप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

कर्मों का संबंध जीव के, साथ अनादि से दुखखान।
बंध उदय सत्ता आदिक का, कर्मप्रवाद करे व्याख्यान।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।19।।

ॐ ह्रीं कर्मप्रवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

नियत समय अनियत समयों तक, उपवासादी प्रत्याख्यान।
इनकी विधि आदिक को वरणें, प्रत्याखान पूर्व अमलान।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।20।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

रोहिणि आदिक विद्याओं, अष्टांग निमित्तों का व्याख्यान।
विद्यानुप्रवाद पूरब में, इसको पढ़े अचल गुणवान।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।21।।

ॐ ह्रीं विद्यानुवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

तीर्थंकर के पंचकल्याणक, पुरुष शलाका चरित प्रधान।
सूर्यादिक गति ग्रह आदिक फल, कहे कल्याणवाद सुखदान।।

इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।22।।

ॐ ह्रीं कल्याणवादपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

देह चिकित्सा आठ अंग युत, आयुर्वेद व प्राणायाम।
प्राणावाय पूर्व वर्णे नित, तनु रत्नत्रय साधन मान।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।23।।

ॐ ह्रीं प्राणावायपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

कला बहत्तर नर की चौंसठ, गुण नारी के शिल्पकलादि।
क्रिया विशाल पूर्व वर्णे नित, काव्यों की निर्माण कलादि।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।24।।

ॐ ह्रीं क्रियाविशालपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

आठ भेद व्यवहार चारविध, बीज मोक्ष गमनादि क्रिया।
लोकबिंदुसार कहता है, शिवसुख औ उसकी चर्या।।
इस पूरब ज्ञानी पाठक को, अर्घ चढ़ाऊँ भक्ति अपार।
स्वात्म सुधारस आस्वादी वे, हमको करें भवोदधि पार।।25।।

ॐ ह्रीं लोकबिंदुसारपूर्वज्ञानधारकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

—पूर्णार्घ्य-शंभु छंद—

इन ग्यारह अंग पूर्व चौदह, को पढ़ें पढ़ावें शिष्यों को।
या द्वादशांग को भी जाने या, सब तात्कालिक शास्त्रों को।।
वे उपाध्याय गुरु पथदर्शक, उनकी भक्ती जो करते हैं।
वे स्वात्मसुधारस पीकर के, जिन परमानंद सुख भरते हैं।।26।।

ॐ ह्रीं पंचविंशतिगुणसहितोपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: पूर्णार्घ्यं....।

शान्तये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो नम:।**

जयमाला

—दोहा—

आगम नेत्र तृतीय है, जिस साधू के पास।
वे शिव पथ परकाशते, नमूँ नमूँ सुखराशि।।

—रोला छंद—

जय जय श्री गुरुदेव, उपाध्याय पदधारी।
जय जय तुम पदसेव, करते भवि नर नारी।।
जय जय मुनिगण वंद्य, धर्मामृत बरसाते।
जय जय तुम मुनिचंद्र, भव्य कुमुद विकसाते।।1।।

इंद्रफणीन्द्र नरेंद्र, तुम पद भक्ति करे हैं।
सुर किन्नर गंधर्व, तुम गुणगान करे हैं।।
तुम दर्शन से भव्य, सम्यग्दर्श लहे हैं।
पद पंकज आराध्य, सम्यग्ज्ञान लहे हैं।।2।।

मैं हूँ चिच्चैतन्य, परमानंद स्वरूपी।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, अमल अकल चिद्रूपी।।
दर्श ज्ञान सुख वीर्य, सहज अनंत हमारे।
गुण अनंत चित्पिंड चिन्मय ज्योति संभारे।।3।।

रूप गंध रस फास, पुद्गल के गुण जानों।
पुद्गलनिर्मित देह, उसमें ही ये मानों।।
इंद्रिय मन औ वाक्, पुद्गल रूप कहे हैं।
निज आतम से भिन्न, सम्यग्ज्ञान लहे हैं।।4।।

पुण्य पाप द्वय कर्म, पुद्गल की रचना है।
इनमें हर्ष विषाद, कर भव दुख भरना है।।
निश्चय नय से शुद्ध, ज्ञान स्वरूपी आत्मा।
परमाल्हाद अखंड, सौख्य सहित परमात्मा।।5।।

फिर भी यह व्यवहार, नय से कर्म सहित है।
चतुर्गती में नित्य, भ्रमता भ्रांति सहित है।।
अब निज को निज जान,पर को पर श्रद्धाने।
तब चरित्र को धार, सर्व कर्म मल हाने।।6।।

गुरु प्रसाद से आज, सम्यक् रत्न मिला है।
निज पर को प्रतिभास, सम्यग्ज्ञान खिला है।।
सम्यक् चारितपूर्ण, धारण शक्ति नहीं है।
जितना कुछ मुझ पास, उसमें दोष सही है।।7।।

करो कृपा गुरुदेव, शक्ती ऐसी पाऊँ।
पूर्ण चरित्र विकास, करके कर्म नशाऊँ।।
निज को निज के हेतु, निज में ही पा जाऊँ।
"ज्ञानमती" कर पूर्ण, फेर न भव में आऊँ।।8।।

—दोहा—

ज्ञान ध्यान तप में मगन, धारें गुण पच्चीस।
उपाध्याय गुरुवर्य को, नमू नमूँ नत शीश।।9।।

ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं श्रीउपाध्यायपरमेष्ठिभ्य: जयमाला अर्घ्यं....।

शान्तये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

—शेरछन्द—

जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवो निधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य ज्ञानमति से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंत सौख्य भरेंगे।।1।।

।। इत्याशीर्वाद: ।।

(पूजा नं.-6)

सर्वसाधु पूजा

—स्थापना-गीताछंद—

जो नित्य मुक्तीमार्ग रत्नत्रय स्वयं साधें सही।
वे साधु संसाराब्धि तर पाते स्वयं ही शिव मही।।
वहं पे सदा स्वात्मैक परमानंद सुख को भोगते।
उनकी करें हम अर्चना, वे भक्त मन मल धोवते।।1।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं-नाराच छंद

साधु चित्त के समान स्वच्छ नीर लाइये।
साधु चर्ण धार देय पाप पंक क्षालिये।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।1।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ण कांति के समान पीत गंध लाइये।
साधु चर्ण चर्चते समस्त ताप नाशिये।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।2।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

चंद रश्मि के समान धौत शालि लाइये।
चर्ण के समीप पुंज देत सौख्य पाइये।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।3।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पवृक्ष के सुगंधि पुष्प थाल में भरे।
कामदेव के जयी जिनेंद्र-पाद में धरें।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।4।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरिका इमर्तियाँ सुवर्ण थाल में भरे।
भूख व्याधि नाश हेतु आप अर्चना करें।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।5।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नदीप में कपूर ज्योति को जलाइये।
साधुवृंद पूजते सुज्ञान ज्योति पाइये।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।6।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट गंध अति सुगंध धूप खेय अग्नि में।
अष्ट कर्म भस्म होत आप भक्ति रंग में।।

प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।7।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सेब आम संतरा बदाम थाल में भरे।
पूजते हि आप चर्ण मुक्ति अंगना वरे।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।8।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर गंध आदि अष्ट द्रव्य अर्घ ले लिया।
सुख अनंत हेतु, आप चर्ण में समर्पिया।।
प्राकृतीक निर्विकार नग्नरूप को धरें।
मुक्तिवल्लभा तथापि शीघ्र आपको वरें।।9।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

गुरु पद में धारा करूँ, चउ संघ शांती हेत।
शांतीधारा जगत में, आत्यंतिक सुख हेत।।

शान्तये शांतिधारा।।

चंपक हरसिंगार बहु, पुष्प सुगन्धित सार।
पुष्पांजलि से पूजते, होवे सौख्य अपार।।

दिव्य पुष्पांजलि:।।

अथ प्रत्येक अर्घ्य (28 अर्घ्य)

—सोरठा—

द्विविध मोक्षपथ मूल, अट्ठाइस हैं मूलगुण।
नित्य रहे हैं साध, अत: साधु कहलावते।।

इति मंडलस्योपरि पंचमदले पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

—नरेंद्र छंद—

जीव समास योनि आदि को,जान जीव वध टालें।
परम अहिंसा महाव्रती वे, स्वपर दया नित पालें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।1।।

ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादिक से असत न बोलें, सदा सत्य वच बोलें।
अन्य तापकर सत्य वचन भी, कभी न मुख से बोले।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।2।।

ॐ ह्रीं सत्य महाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पर की वस्तु शिष्य या पर के,बिना दिये नहिं लेवें।
मुनि पद योग्य वस्तु यत्किंचित्, दी जाने पर लेवें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।3।।

ॐ ह्रीं अचौर्य महाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब स्त्री को माता पुत्री, भगिनी सम अवलोकें।
त्रिभुवन पूजित ब्रह्मचर्यव्रत, धारें निज अवलोकें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।4।।

ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवाश्रित या अजीव आश्रित, परिग्रह सर्व निवारे।
पिच्छी आदिक त्याग सके नहिं, उनमें ममत न धारें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।5।।

ॐ ह्रीं अपरिग्रहमहाव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिन में प्रासुकपथ से चउकर, देख कार्यवश चलते।
जीव दया पालें वे मुनिवर, ईर्या समिती धरते।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।6।।

ॐ ह्रीं ईर्यासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्कश हास्य पिशुन पर निंदा,विकथादिक को टालें।
स्वपर हितंकर मित वच बोलें, भाषा समिती पालें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।7।।

ॐ ह्रीं भाषासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नवकोटी से शुद्ध अशन ले, छ्यालिस दोष निवारें।
शीत उष्ण में समभावी हों, एषणसमिती धारें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।8।।

ॐ ह्रीं एषणासमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पिच्छि कमंडलु शास्त्र उपकरण, संस्तर आदि उपाधि हैं।
देख शोधकर लेते धरते, चौथी समिति सहित हैं।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।9।।

ॐ ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवरहित एकांत भूमि में, मल मूत्रादिक तजते।
वे उत्सर्ग समिति धारी मुनि, निष्प्रमाद नित वरतें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।10।।

ॐ ह्रीं उत्सर्गसमितिसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मृदु कठोर आदिक स्पर्श जो, सुखकर या दुखकर हैं।
उनमें राग द्वेष नहिं करते, स्पर्शेंद्रिय वशकर है।।

निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।11।।

ॐ ह्रीं स्पर्शनेंद्रिय निरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस रुक्ष या प्रिय अप्रियकर, दिये गये भोजन में।
आसक्ती निंदा नहिं करते, रसनेंद्रिय जय उनमें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।12।।

ॐ ह्रीं रसनेंद्रिय निरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अति सुगंध या दुर्गंधित में, प्रीति अप्रीति न धारें।
घ्राणेन्द्रिय का जय करके मुनि, स्वात्म कीर्ति विस्तारें।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।13।।

ॐ ह्रीं घ्राणेंद्रिय निरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नानाविध के रूप मनोहर, या अमनोहर होते।
उनमें राग द्वेष नहीं कर, मुनि चक्षू कर होते।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।14।।

ॐ ह्रीं चक्षुरिन्द्रिय निरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चेतन और अचेतन के जो, शब्द मधुर या कटु हों।
हर्ष विषाद न किंचित् मन में, श्रोत्रजयी मुनि सच वो।।
निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय, का नित साधन करते।
ऐसे गुरु को अर्घ चढ़ाकर, हम आराधन करते।।15।।

ॐ ह्रीं श्रोत्रेन्द्रिय निरोधव्रतसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—कुसुमलता छन्द—

षट् आवश्यक में समता है,सुख दु:खादिक में समभाव।
तीन काल सामायिक विधिवत्,कर मुनि शमन करें दुखदाव।।

परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।16।।

ॐ ह्रीं समतावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

चौबिस तीर्थंकरों का स्तवन, विधिवत् नित्य करें धर चाव।
धर्मध्यान और शुक्लध्यान धर, हरते सर्व दुष्ट दुर्भाव।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।17।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिस्तव आवश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

एक तीर्थंकर या मुनिवर की, करें वंदना भक्ति बढ़ाय।
कृतीकर्म विधिवत् कर करके, उनके शुद्धभाव अधिकाय।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।18।।

ॐ ह्रीं वंदनावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

व्रत में दोष हुए प्रमाद से, उनको जो मुनि क्षालन हेत।
मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे, ऐसा कह प्रतिक्रमण करेत।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।19।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

भावी काल दोष को त्यागें, तथा तपस्या हेतु सदैव।
आहारादि त्याग कर देते, प्रत्याख्यान करें गुरुदेव।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।20।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं...।

दैवसिकादि क्रियाओं में जो, शास्त्र कथित उच्छ्वास समेत।
कायोत्सर्गविधि करते हैं, वे मुनि हरें सकल भव खेद।।

परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।21।।
ॐ ह्रीं कायोत्सर्गावश्यकसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दो या तीन मास या चउ में, कर उपवास करें कचलोच।
उत्तम मध्यम जघन रीति यह, केश उखाड़ें नहिं मन शोच।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।22।।
ॐ ह्रीं केशलोंचगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वस्त्राभूषण अलंकार सब, तजकर धरें दिगंबर वेष।
यथाजात बालकवत् रहते, निर्विकार मन लेश न क्लेश।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।23।।
ॐ ह्रीं आचेलक्यगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नहिं स्नान करें मुनि कबहूँ, स्वेदधूलि मल लिप्त शरीर।
संयम औ वैराग्य हेतु ही, परमघोर गुण धरें सुधीर।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।24।।
ॐ ह्रीं अस्नानगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूमि शिला पाटे या तृण पर, शयन करें भूशयन व्रतीश।
गृही योग्य मृदु कोमल शय्या, तजकर होते स्वात्मरतीश।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।25।।
ॐ ह्रीं क्षितिशयनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मंजन आदिक से दाँतों का, घर्षण नहिं करते गतराग।
वे अदंतधावन व्रतधारी, उनका आत्म गुणों में राग।।

परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक, नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।26।।
ॐ ह्रीं अदंतधावनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन भूमि का कर अवलोकन,भित्ति आदि का नहिं आधार।
अंजलि पुट में मिले अशन का, खड़े-खड़े करते आहार।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।27।।
ॐ ह्रीं स्थितिभोजनगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूर्य उदय औ अस्तकाल का, त्रय-त्रय घड़ी रहित मधिकाल।
दिन में एक बार भोजन लें, एक भक्तधारी गुणमाल।।
परम अतींद्रिय सुख के इच्छुक,नितप्रति-स्वात्मतत्व का ध्यान।
उन मुनिवर को अर्घ चढ़ाकर, पाऊँ स्वपर भेदविज्ञान।।28।।
ॐ ह्रीं एकभक्तगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्णार्घ्य-शंभु छंद

व्रत समिति इन्द्रियवश आवश्यक पंच-पंच पण षट् मानो।
कचलोच अचेलक अस्नानं, क्षितिशयन अदंत धावन जानों।।
स्थितिभोजन एक भक्त ये सब, अट्ठाइस गुण जो मूल कहें।
इन संयुत सब साधूगण को, हम पूजे भवदधि कूल लहें।।29।।
ॐ ह्रीं अष्टाविंशतिमूलगुणसहितसाधुपरमेष्ठिभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
शान्तये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

जाप्य-ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो नम:।

जयमाला

—दोहा—

चिच्चैतन्य सुकल्पतरु, आश्रय ले सुखकार।
शिवफल की वाञ्छा करें, नमूँ साधु गुणधार।।

चाल-हे दीनबंधु..................

जैवंत साधुवृंद सकल द्वंद्व निवारें।
जैवंत सुखानन्द स्वात्म तत्त्व विचारें।।
जै जै मुनीन्द्र नग्नरूप धार रहे हैं।
जै जै अनंत सौख्य के आधार भये हैं।।1।।

गुरुदेव अट्ठाईस मूलगुण को धारते।
उत्तर गुणों को भक्ति के अनुसार धारते।।
श्रुत का अभ्यास द्वादशांग तक भी कर रहे।
निज रूप से ही मोक्षपद साकार कर रहे।।2।।

ग्रीष्म ऋतु में पर्वतों पे ध्यान धरे हैं।
वर्षा ऋतू में वृक्षमूल में ही खड़े हैं।।
ठण्डी ऋतू में चौहटे पे या नदी तटे।
निज आत्मा को ध्यावते शिवपथ से नहिं हटे।।3।।

बहु तप के भेद सिंह निष्क्रीडितादि हैं।
उनको सदा करें न तन से ममत आदि हैं।।
तप ऋद्धि बुद्धि ऋद्धि क्रिया विक्रिया ऋद्धी।
रस ऋद्धि और अक्षीणऋद्धि औषधी ऋद्धी।।4।।

नाना प्रकार ऋद्धियों के नाथ हुए हैं।
सिद्धी रमा से भी वे ही सनाथ हुए हैं।।
इनके दरश से भव्य जीव पाप को हरें।
आहार दे नवनिधि समृद्धि पुण्य को भरें।।5।।

इनकी सदैव भक्ति से, जो वंदना करें।
वे मोहकर्म की स्वयं ही खंडना करें।।
मिथ्यात्व औ विषय कषाय दूर से टरें।
स्वयमेव भक्त निजानंद पूर से भरें।।6।।

गुणथान छठे सातवें से चौदहें तक भी।
संयत मुनी ऋषि साधु कहाते हैं सभी भी।।
वे तीनन्यून नव करोड़ संख्य कहे हैं।
बस ढाई द्वीप में अधिक इतने ही रहे हैं।।7।।

इन सर्व साधुओं की नित्य अर्चना करूँ।
त्रयकाल के भी साधुओं की वंदना करूँ।।
गुरुदेव! बार बार मैं ये प्रार्थना करूँ।
निजके ही तीन रत्न की बस याचना करूँ।।8।।

—दोहा—

नाम लेत ही अघ टले, सर्वसाधु का सत्य।
केवल 'ज्ञानमती' मिले, जो अनंतगुण तथ्य।।9।।

ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं श्रीसर्वसाधुपरमेष्ठिभ्य: जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

—शेरछन्द—

जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवो निधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमति' से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंत सौख्य भरेंगे।।1।।

।। इत्याशीर्वाद: ।।

(पूजा नं.-7)

जिनधर्म पूजा

—अथ स्थापना-गीताछंद—

उत्तम क्षमादी धर्म हैं, औ दया धर्म प्रधान है।
वस्तू स्वभाव सु धर्म है, औ रत्नत्रय गुणखान है।।
जो जीव को ले जाके धरता सर्व उत्तम सौख्य में।
वह धर्म है जिनराज भाषित पूजहूँ तिंहुकाल मैं।।१।।

—दोहा—

भरतैरावत क्षेत्र में, चौथे पांचवे काल।
शाश्वत रहे विदेह में, धर्म जगत् प्रतिपाल।।२।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

—अष्टक—

चाल-नंदीश्वर पूजा.........

रेवानदि को जल लाय, कंचन भृंग भरूँ।
त्रयधार करूँ सुखदाय आतम शुद्ध करूँ।।
जिनधर्म विश्व का धर्म सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म गुण रत्नाकर है।।१।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चंदन गंध, घिस कर्पूर मिला।
जजते ही धर्म अमंद, निज मन कमल खिला।।
जिनधर्म विश्व का धर्म सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म गुण रत्नाकर है।।२।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शशिकर सम तंदुल श्वेत, खंड विवर्जित हैं।
शिवरमणी परिणय हेत, पुंज समर्पित हैं।।
जिनधर्म विश्व का धर्म, सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म, गुण रत्नाकर है।।३।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सित कुमुद नील अरविंद, लाल कमल प्यारे।
मदनारि विजयहित धर्म, पूजूँ सुखकारे।।
जिनधर्म विश्व का धर्म, सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म, गुण रत्नाकर है।।४।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरणपोली पयसार[१] पायस[२] मालपुआ।
जिनधर्म अमृतसम पूज, आतम सौख्य हुआ।।
जिनधर्म विश्व का धर्म, सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म, गुण रत्नाकर है।।५।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणि दीप कपूर प्रजाल, ज्योति उद्योत करे।
अंतर में भेद विज्ञान, प्रगटे मोह हरे।।
जिनधर्म विश्व का धर्म, सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म, गुण रत्नाकर है।।६।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश गंध अग्नि में जार, सुरभित गंध करे।
नित आतम अनुभवसार, कर्म कलंक हरे।।
जिनधर्म विश्व का धर्म, सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म, गुण रत्नाकर है।।७।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. मलाई। २. खीर।

एला केला फल आम्र, जंबू निंबु हरे।
शिवकांता संगम हेतु, तुम ढिग भेंट करे।।
जिनधर्म विश्व का धर्म, सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म, गुण रत्नाकर है।।८।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सलिलादिक द्रव्य मिलाय, कंचनपात्र भरे।
जिनवृष[१] को अर्घ चढ़ाय शिवसामाज्य वरें।।
जिनधर्म विश्व का धर्म सर्व सुखाकर है।
मैं जजूँ सार्वहित धर्म गुण रत्नाकर है।।९।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तश्रीजिनधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

शांतिधारा मैं करूँ, जैन धर्म हितकार।
चउसंघ में शांति करो, हरो सर्व दुख भार।।१०।।

शांतये शांतिधारा।

पुष्पांजलि से पूजहूँ, श्री जिनधर्म महान्।
दुख दारिद संकट टले, बनूँ आत्मनिधिमान।।११।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य (४३ अर्घ्य)

—सोरठा—

मंगल रूप महान, जग में लोकोत्तम कहा।
श्री केवलि भगवान, कथित धर्म सबको शरण।।१।।

अथ मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

—नरेन्द्र छंद—

वस्तु स्वभाव हि धर्म कहाता, जल स्वभाव से शीतल।
आत्म स्वभाव ज्ञान दर्शनमय, शुद्ध भाव से निर्मल।।

१. धर्म

यह स्वभाव है तर्क अगोचर, इसकी पूजा करके।
वस्तु स्वभावी शुद्धात्मा को, प्राप्त करूँ जिन वृष से।।१।।

ॐ ह्रीं वस्तुस्वभावमयजिनधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—रोलाछंद—

दया धर्म का मूल, सर्व प्रधान जगत में।
जीवन दान महान्, सर्वश्रेष्ठ त्रिभुवन में।।
गृहस्थ मुनि के भेद, से दो भेद दया के।
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, मम चित बसे दया ये।।१०।।

ॐ ह्रीं जीवदयापरमधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन रत्न, आठ अंग युत माना।
मोक्षमार्ग का मूल, मुनियों ने है जाना।।
निःशंकित है अंग, जिन वच में नहि शंका।
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, निज में हो दृढ़ श्रद्धा।।११।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनस्य निःशंकितअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इह भव में विभवार्दि, आगे चक्री आदिक।
नाना सुख की चाह, अथवा अन्य मतादिक।।
जो नहिं करते भव्य, निःकांक्षित है उनके।
पूजूँ अंग द्वितीय, मिले आत्म सुख जिससे।।१२।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनस्य निःकांक्षितअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय से पूत, मुनियों का तन मानो।
मलमूत्रादिक वस्तु, भरित घिनावन जानो।।
ग्लानि न करके भव्य, गुण में प्रीत बढ़ावें।
निर्विचिकित्सा अंग, इसे जजत सुख पावें।।१३।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनस्य निर्विचिकित्साअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुत्सिग मार्ग कुधर्म, कुपथ लीन जन बहुते।
इनको माने मूढ़, सम्यग्दृष्टी बचते।।

चौथा अंग अमूढ़, दृष्टि कहा जाता है।
इसे पूजते भव्य, उनने भव नाशा है।।१४।।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनस्य अमूढदृष्टिअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
सदा शुद्ध शिवमार्ग, अज्ञानी जन आश्रय।
दोष कदाचित् होंय, उन्हें ढकें शुभ आशय।।
निज आत्मा के धर्म, मार्दव आदि बढ़ावें।
उपगूहन यह अंग, इसे जजत सुख पावें।।१५।।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनस्य उपगूहनअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
सम्यक या चारित से, जो जन च्युत हो जावें।
उसमें सुस्थिर कर दे, युक्ती आदि उपाये।।
निज को भी शिवमार्ग, में ही दृढ़ रखे जो।
स्थितिकरण यह अंग, इसे जजें सुख लें वो।।१६।।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनस्य स्थितीकरणअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
सहधर्मी जन संघ, कपट रहित हो प्रीती।
यथायोग्य सत्कार, यह वात्सल की रीती।।
गाय वत्सवत्प्रेम, वात्सल्य गुण माना।
सम्यग्दर्शन अंग, इसे जजत सुख पाना।।१७।।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनस्य वात्सल्यअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
निज प्रभावना करे, निज गुण तेज बढ़ावे।
पूजा दान तपादिक, से जिनधर्म दिपावे।।
यह प्रभावना अंग, तम अज्ञान हटावे।
इसको पूजें भव्य, धर्म महात्म्य दिखावें।।१८।।
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनस्य प्रभावनाअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

अष्ट अंगयुत दृष्टि यह, दोष पच्चीस विहीन।
परमानन्द अमृत भरे करे दोष सब क्षीण।।१९।।
ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

समकित होते ही हुआ, सम्यग्ज्ञान अपूर्व।
फिर भी ज्ञानाराधना, करो अष्टविध पूर्व[१]।।

—नरेन्द्र छंद—

स्वर व्यंजन से शुद्ध पूर्ण जो, करे प्रगट उच्चारण।
शब्दाचार करे वृद्धिंगत, शुद्ध ज्ञान आराधन।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाल्हाद विधाता।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं नित पूजूँ, मिले सर्वसुख साता।।२०।।
ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानस्य शब्दाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
सूत्र आदि का अर्थ शुद्ध हो, गुरु की परम्परा से।
पूर्वापर संबंध जुड़ा हो, नहिं अनर्थ हो जिससे।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाल्हाद विधाता।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं नित पूजूँ, मिले सर्वसुख साता।।२१।।
ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानस्य अर्थाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
शब्द अर्थ की पूर्ण शुद्धि हो, उभयाचार कहावे।
उभय नयों से भी सापेक्षित, ज्ञानज्योति प्रगटावे।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाल्हाद विधाता।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं नित पूजूँ, मिले सर्वसुख साता।।२२।।
ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानस्य उभयाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
त्रय संध्या उल्का ग्रहणादिक, बहुत अकाल बखाने।
इन्हें छोड़ सिद्धांत ग्रंथ को, पढ़े जिनाज्ञा मानें।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाल्हाद विधाता।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं नित पूजूँ, मिले सर्वसुख साता।।२३।।
ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानस्य कालाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
हाथ पैर आदि धोकर के, शुभ स्थान में पढ़ते।
हाथ जोड़ श्रुत भक्ति आदिकर, विनय बहुत विध धरते।।

१. पूर्वक।

स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाल्हाद विधाता।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं नित पूजूँ, मिले सर्वसुख साता।।२४।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय विनयाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुछ रस आदि त्याग कर श्रुत को, पढ़े नियम धर रूचि से।
यह उपधान सहित आराधन ज्ञान बढ़े नित इससे।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाल्हाद विधाता।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं नित पूजूँ, मिले सर्वसुख साता।।२५।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानस्य उपधानाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ग्रंथ और गुरुजन का आदर, पूजा भक्ति करें जो।
यह बहुमान भावश्रुत करके, केवलज्ञान करे वो।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाल्हाद विधाता।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं नित पूजूँ, मिले सर्वसुख साता।।२६।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानस्य बहुमानाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस गुरु से या जिन शास्त्रों से, ज्ञान प्राप्त हो जाता।
उनका नाम छिपावे नहिं, वह कहा अनिह्नव जाता।।
स्वपर भेद विज्ञान प्रकट हो, परमाल्हाद विधाता।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं नित पूजूँ, मिले सर्वसुख साता।।२७।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानस्य अनिन्हवाचाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

ज्ञान अष्टविध धारते, प्रगटे केवलज्ञान।
अर्घ्य चढ़ाकर मैं करूँ, स्वात्म सुधारस पान।।२८।।

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

सकल विकल के भेद से, चारित द्विविध महान।
विकल चरित श्रावक धरें, बनें शील गुणवान।।

—पद्धड़ि छंद—

सम्यक्त्व सहित अणुव्रत सुपांच, गुणव्रत शिक्षाव्रत कहे सात।
ये बारह व्रत हैं गृहीधर्म, इनको पूजें वो लहें शर्म।।२९।।

ॐ ह्रीं विकलचारित्रस्य सम्यक्त्वसहितअणुव्रतादिद्वादशविधश्रावकधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो दर्शन व्रत सामायिकादि, ग्यारह प्रतिमा व्रत हैं अनादि।
इनसे श्रावक बनते महान्, यह प्रथम धर्म पूजें सुजान।।३०।।

ॐ ह्रीं विकलचारित्रस्य दर्शनव्रतादिएकादशप्रतिमारूपश्रावकधर्मेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—सोरठा—

मुनीधर्म के भेद, तेरह विध श्रुत में कहे।
उन्हें धरें बिन खेद, वे साधू भवदधि तिरें।।

—भुजंगप्रयात छंद—

महाव्रत अहिंसा प्रथम है जगत में।
सभी प्राणियों की दया है प्रगट में।।
दिगम्बर मुनी ही इसे पालते हैं।
जजें जो अहिंसा वो अघ टालते हैं।।३१।।

ॐ ह्रीं सकलचारित्रस्य अहिंसामहाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असत् अप्रशस्ते वचन जो न बोलें।
हितंकर मधुर मित सदा सत्य बोलें।।
यही सत्य व्रत दूसरा व्रत कहाता।
इसे पूजहूँ ये वचनसिद्धि दाता।।३२।।

ॐ ह्रीं सकलचारित्रस्य सत्यमहाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पराया धनं शिष्य आदी न लेना।
महाव्रत अचौर्य निधी वो बखाना।।

इसे पूजते स्वात्म संपत्ति मिलती।
जिसे प्राप्त करते महासाधुगण ही।।३३।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य अचौर्यमहाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुता मात भगिनी सदृश सर्व महिला।
महाव्रत सुब्रह्मचर धरे कोई विरला।।
त्रिजग पूज्य इंद्रादिवंदित ये व्रत है।
इसी से परमब्रह्म होता प्रगट है।।३४।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य ब्रह्मचर्यमहाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह सभी मुक्ति जाने में बाधे।
दिगम्बर मुनी ही सभी वस्तु त्यागें।।
जगत भार से छूटते ही विदेही।
जजूँ पाँचवां व्रत बनूँ मुक्तिगेही।।३५।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य अपरिग्रहमहाव्रताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्युग प्रमाणे धरा देख चलना।
बिना कार्य के एक भी पग न धरना।।
सुगुरुदेव तीर्थादिवंदन निमित्त से।
गमन हो समिति ईरिया को जजूँ मैं।।३६।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य ईर्यासमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर हित व मित मिष्ट वच नित्य भाषें।
सुभाषासमिति को मुनीगण प्रकाशें।।
इसे धारते मुक्तिकन्या भि हो वश।
जजूँ भक्ति से प्राप्त निर्दोष हों वच।।३७।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य भाषासमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृतादी रहित अन्न प्रासुक स्वहितकर।
गृहस्थी के द्वारा दिया लेवें मुनिवर।।

स्वकर पात्र में लें खड़े एक बारे।
यही एषणा समिति क्षुध व्याधि टारे।।३८।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य एषणासमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कमण्डलु व शास्त्रादि जो वस्तु धरना।
उठाना यदी प्राणियों पे हो करुणा।।
प्रथम चक्षु से देख पिच्छी से शोधें।
ये आदान निक्षेप समिती सपूजें।।३९।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य आदाननिक्षेपणसमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हरितकाय जंतू रहित भूमि पर जो।
स्वमलमूत्र आदी विकृति को तजें वो।।
विउत्सर्ग समिति धरें जैन साधू।
जजूँ मैं इसे फिर स्वशुद्धात्म साधू।।४०।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य व्युत्सर्गसमित्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महादोष रागादि से चित्त दूरा।
मनोगुप्ति ये पालते साधु शूरा।।
पुनः शुभ अशुभ भाव दोनों निरोधे।
निजानंद रसलीन गुप्ती सुपूजें।।४१।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य मनोगुप्त्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वचनगुप्ति आगम के अनुकूल बोलें।
पुनः मौन धर मुक्ति का द्वार खोलें।।
इसी से वचनसिद्धि दिव्यध्वनी भी।
मिलेगी अतः पूजहूँ धार भक्ती।।४२।।
ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य वचोगुप्त्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वतन की क्रिया सर्व शुभ ही करें जो।
पुनः कार्य से मोह तज सुस्थिरी हों।।

उभय कायगुप्ती शुक्ल ध्यान पूरे।
जजूँ मैं इसे नंतबल मुझ प्रपूरे।।४३।।

ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रस्य कायगुप्त्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य-चौबोल छंद—

पाँच महाव्रत पाँच समिति औ, तीन गुप्ति ये तेरह विध।
सम्यक्चारित मुक्ति प्रदायक अठबिस मूलगुणों से युत।।
द्वादश तप बाईस परीषह, चौंतिस उत्तर गुण जानों।
लाख चौरासी गुण सर्वाधिक, पूजत ही भव दुख हानो।।४४।।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसर्वोत्कृष्टचतुरशीतिलक्षगुणयुतसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य—

रत्नत्रय है धर्म, निश्चित मुक्ति प्रदाता।
सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र से सुखदाता।।
निश्चय और व्यवहार द्विविध धर्म रत्नत्रय।
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय निज को करूँ धर्ममय।।४५।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

दशधर्म अर्घ्य

—गीता छंद—

क्रोध के बहु निमित मिलते, हो न मन में कलुषता।
निज अशुभ कर्मोदय निमित, लख पियें समर समयसुधा।।
उत्तम क्षमा यह धर्म जग में, वैर निज पर का हरे।
यह पूर्ण शांती सौख्यदाता, पूजते मन खुश करे।।४६।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मृदुभाव मार्दव मान हरता, विनय गुण चित में भरे।
हो उच्चगोत्री मनुष चक्री, सुरपती के पद धरे।।

कुल जाति बल रूपादिमद से, मिलत है नीची गती।
अतएव मार्दव गुण बड़ा है, पूजते दे शिवगती।।४७।।

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मन वचन तन की कुटिलता से, योनि तिर्यक् की मिले।
मन वचन तन की सरलता से, ऋजू शिवगति भी मिले।।
विश्वासघात समान नहिं है, पाप जग में अन्य कुछ।
अतएव आर्जव धर्म उत्तम, पूजहूँ मैं भक्तियुत।।४८।।

ॐ ह्रीं उत्तम आर्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह लोभ पाप महान् जग में, सर्व पापों का जनक।
धन स्वास्थ्य इंद्रिय आदि का भी, लोभ है दुखकर प्रगट।।
गंगा यमुना स्नान से नहिं, आत्म शुद्धी हो कभी।
तज लोभ उत्तम शौच से हो, स्वात्मशुचि पूजूँ अभी।।४९।।

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सच हैं प्रशस्त सुवचन निंदा, पाप कलहादिक रहित।
हो जाय विपदा धर्म पर, ऐसा न सच बोले क्वचित।।
जिनकथित मेरू आदि हैं, अपमृत्यु भी हो लोक में।
यह सत्य वच सर्वोच्च जग में, पूजहूँ दे धोक मैं।।५०।।

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रस और स्थावर सभी, षट्काय जीवों पर दया।
पंचेन्द्रियों औ चपल मन को, शास्त्रविधि से वश किया।।
संयम सकल या देशसंयम, देवगति ही देयगा।
जो भव्य धारेंगे इसे, उन जन्म दुख हर लेयगा।।५१।।

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप बाह्य आभ्यंतर उभय, बारह प्रकार प्रसिद्ध हैं।
जो करें उपवासादि उनको, ऋद्धि सिद्धी प्रगट हैं।।

स्वाध्याय प्रायश्चित विनय, व्युत्सर्ग वैयावृत्य तप।
औ ध्यान आत्मविशुद्धि करते, इन बिना नहिं मुक्तिपद।।५२।।

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि रत्नत्रय का दान उत्तम, त्याग आगम में कहा।
आहार औषधि अभयदान, सुदान चउविध भी कहा।।
इन दान में खर्चा गया धन, कूप जलसम बढ़ेगा।
फल भी अनंते गुणे देकर, मोक्ष में ले धरेगा।।५३।।

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुछ भी न मेरा यह अकिंचन, धर्म सब दुख देयगा।
मुनिवर अकिंचन धर्म पालें, निजगुण अनंते ले सदा।।
जो भी अणुव्रत धारते, क्रम से ममत्व घटाइये।
त्रैलोक्य संपति के धनी बन, स्वात्मरस सुख पाइये।।५४।।

ॐ ह्रीं उत्तमआकिंचन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब नारियों को मातृवत, गिन ब्रह्मचारी जो बनें।
महिलाएं भी ब्रह्मचारिणी बन, पूज्य होतीं जगत में।।
निज ब्रह्म में रति ब्रह्मचर्य सुरेन्द्रगण भी नमत हैं।
इकदेश व्रत ब्रह्मचर्य से, यहां अनल भी जल बनत हैं।।५५।।

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य-चौबोल छंद—

वैराग्य त्याग दो काष्ठ खंड से, निर्मित सुघड़ नसैनी है।
दशधर्मों की दश पैड़ी से युत, मोक्षमहल की सीढ़ी हैं।।
मुमुक्षु मुनीगण इससे चढ़कर, मुक्तिरमा ढिग जाते हैं।
दश धर्मों को मैं नित पूजूँ, ये निज राज्य दिलाते हैं।।५६।।

ॐ ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तदशधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

इक सौ सत्तर हैं कर्मभूमि, उनमें जिनधर्म सदा रहता।
सब जीव दयामय धर्म और, वस्तू स्वभाव से भी रहता।।

रत्नत्रयमय है धर्म व दशविध, धर्म तीर्थंकर भाषित हैं।
मैं जजूँ नित्य पूर्णार्घ्य लिये, यह शाश्वत सौख्य सुधारस है।।५७।।

ॐ ह्रीं सप्तत्यधिकशतकर्मभूमिसंजातजीवदयामयवस्तुस्वभावस्वरूप-रत्नत्रयरूपदशलक्षणधर्मस्वरूपत्रैकालिकजिनधर्मेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य-ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः।

जयमाला

—शंभु छंद—

तीर्थंकर प्रभु के श्रीविहार में, धर्मचक्र आगे आगे।
चलता रहता जिससे भू पर, जीवों के दुख दारिद भागे।।
सर्वाण्ह यक्ष चारों दिश में, यह धर्मचक्र शिर पर धारे।
जिनधर्म अनादी औ अनंत, इसकी जयमाला भव टारे।।१।।

—पंचचामर छंद—

जयो जिनेन्द्र धर्म जीव की दया प्रधानमय।
जयो जिनेन्द्र धर्म वस्तु का स्वभाव शुद्धमय।।
जयो जिनेन्द्र धर्म जो क्षमादि दश प्रकार हैं।
जयो जिनेन्द्र धर्म रत्न-तीनरूप सार है।।१।।

इसे धरें स्वयंवरा अनंत ऋद्धियाँ वरें।
हितंकरा अनंत सिद्धियां स्वयं पगे परें।।
शुभंकरा ध्वनी अनंत भव्य को सुखी करे।
समस्त जीव राशि को प्रियंवदा सुखी करे।।२।।

गणेश धारते इसे महा प्रमोद भाव से।
मुनीश धारते इसे बचें विभाव भाव से।।
सुरेश नित्य चाहते मनुष्य जन्म में मिले।
नरेश नित्य गावते यही धरम हमें मिले।।३।।

महान धर्म इन्द्रवंद्य केवली प्रणीत है।
महान धर्म चक्रिवंद्य सर्व मंगलीक है।।
महान धर्म साधु पूज्य लोक में सुश्रेष्ठ है।
महान धर्म भव्य को सदैव शर्ण देत है।।४।।

अनादि जैन धर्म ये समस्त सौख्य खान ही।
अनादि जैनधर्म को मनीषि धारते यहीं।।
अनादि जैनधर्म से विनाशते करम सभी।
अनादि जैनधर्म के लिए नमोऽस्तु हो अभी।।५।।

अनादि जैनधर्म से बड़ा न कोई मित्र है।
अनादि जैनधर्म का दया हि मूल इष्ट है।।
अनादि जैनधर्म में सदैव चित्त को धरो।
अहो अनादि जैनधर्म! मुझपे नित कृपा करो।।६।।

जिनेन्द्र धर्म से सुचक्रवर्ति संपदा मिले।
जिनेन्द्र धर्म से सुरेन्द्र की भि संपदा मिले।।
जिनेन्द्र धर्म से हि तीर्थनाथ संपदा मिले।
जिनेन्द्र धर्म से हि शीघ्र मुक्तिवल्लभा मिले।।७।।

—दोहा—

जन्म मरण व्याधी महा, उसके नाशन हेत।
धर्म महौषधि विश्व में, नमूँ नमूँ शिव हेत।।

ॐ ह्रीं सप्तत्यधिकशतकर्मभूमिषु प्रवर्तमानकेवलिप्रज्ञप्तजिनधर्माय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

शेरछंद— जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवोनिधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमति' से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंत सौख्य भरेंगे।।१।।

।।इत्याशीर्वादः।।

(पूजा नं.-8)

जिनागम पूजा

—स्थापना–गीताछंद—

जिनदेव के मुख से खिरी, दिव्यध्वनी अनअक्षरी।
गणधर ग्रहण कर द्वादशांगी, ग्रंथमय रचना करी।।
उन अंग पूरब शास्त्र के ही, अंश ये सब शास्त्र हैं।
उस जैनवाणी को जजूँ, जो ज्ञान अमृत सार है।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागम-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागम-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागम-समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथ अष्टक–चामर छंद

जैन साधु चित्त सम पवित्र नीर ले लिया।
स्वर्ण भृंग में भरा पवित्र भाव मैं किया।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशरादि को घिसाय स्वर्ण पात्र में भरी।
पाप ताप शांति हेतु पूजहूँ इसी घरी।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्ररश्मि के समान धौत स्वच्छ शालि हैं।
पुंज को चढ़ावते भरा सुवर्ण थाल है।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मोगरा गुलाब चंप केतकी चुनाय के।
स्वात्म सौख्य प्राप्त होय पुष्प को चढ़ावते।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लड्डुकादि व्यंजनों से थाल को भराय के।
ज्ञानदेवता समीप भक्ति से चढ़ाय के।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप में कपूर ज्वाल आरती उतारहूं।
ज्ञान पूर जैन भारती हृदय में धारहूं।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप ले दशांग अग्नि पात्र में हि खेवते।
कर्म भस्म हो उड़े सुगंधि को बिखेरते।।

द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सेब संतरा अनार द्राक्ष थाल में भरे।
मोक्ष फल के हेतु शास्त्र के समीप ले धरे।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वारि गंध शालि पुष्प चरू सुदीप धूप ले।
सत्फलों समेत अर्घ से जजें सुयश मिले।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्ण भृंग नाल से सुशांति धार देय के।
विश्व शांति हो तुरन्त इष्ट सौख्य देय के।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।१०।।

शांतये शांतिधारा।

गंध से समस्त दिक् सुगंध कर रहे सदा।
पुष्प को समर्पिते न दुख व्याधि हो कदा।।
द्वादशांग जैनवाणी पूजते उद्योत हो।
मोहध्वांत नष्ट हो उदीत ज्ञानज्योति हो।।११।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य (३८ अर्घ्य)

—सोरठा—

जिनवाणी है पूज्य, अंग तथा अंग बाह्य जो।
जिनवच जिनसम पूज्य, अतः पूजहूँ भक्ति से।।
अथ मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

—चौपाई —

मुनियों के आचार प्रधान, उनका पूरण करे बखान।
करो यत्नपूर्वक सब क्रिया, जिससे मिले शीघ्र शिवप्रिया।।

—दोहा—

पद हैं आचारांग में, अठरह सहस प्रमाण।
जो पूजें नित अर्घ ले, मिले सौख्य निर्वाण।।१।।
ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतआचारांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—चौपाई छंद—

स्व समय पर समयों को कहे, स्त्री के लक्षण वरणये।
सूत्रकृतांग दूसरा अंग, इसको नमत मिले सुख संग।।
दोहा—इसी दूसरे अंग में, पद छत्तीस हजार।
पूजत ही भ्रम नाश के, मिले समय का सार।।२।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतसूत्रकृतांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—जीव और पुद्गल के भेद, एक दोय त्रय आदि अनेक।
वर्णे स्थानांग सदैव, पूजत मिले ज्ञान स्वयमेव।।
दोहा—तीजे स्थानांग में, पद ब्यालीस हजार।
जो पूजें वे शीघ्र ही, लहें स्वात्म निधिसार।।३।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतस्थानांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—द्रव्य अपेक्षा रहें समान, उसे कहें समवाय सुमान।
क्षेत्र, काल, अरू भाव समान, इनका भी यह करे बखान।।

दोहा— एक लाख चौंसठ सहस, पद इसके हैं जान।
पूजत ही जिनके सदृश, मिलता स्वात्म निधान।।४।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतसमवायांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—जीव अस्ति या नास्ति आदि, साठ हजार प्रश्न इत्यादि।
इनका उत्तर देवे नित्य, व्याख्या प्रज्ञप्ती वह सिद्ध।।
दोहा—पद माने दो लाख अरू, अट्ठाईस हजार।
वसुविध अर्घ चढ़ाय हूँ, मिले सुगुण भंडार।।५।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतव्याख्याप्रज्ञप्तिअंगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—तीर्थंकर की धर्म कथादि, दिव्यध्वनि से वर्णे सादी।
त्रय संध्या में खिरती ध्वनी, संशय आदि दोष को हनी।।
दोहा—पांच लाख छप्पन सहस, पद हैं इसमें जान।
नाथ धर्म कथांग यह, जजूँ इसे गुणखान।।६।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतनाथधर्मकथांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—पाक्षिक नैष्ठिक साधक भेद, श्रावक के प्रतिमादि अनेक।
इनका वर्णन करे अमंद, सो उपासकाध्ययन सुअंग।।
दोहा—ग्यारह लाख सत्तर सहस, पद हैं इसमें सिद्ध।
जो पूजें नित भाव से, वे पद लहें अनिंद्य।।७।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतउपासकाध्ययनांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—प्रति तीर्थंकर तीरथकाल, दश दश मुनि निज आत्म संभाल।
घोर घोर उपसर्ग सहंत, केवलि हो निर्वाण लहंत।।
दोहा—अन्तःकृत दश नाम यह, अंग जजूँ धर नेह।
तेइस लख अठवीस सहस, पद से यह वर्णेय।।८।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतअंतःकृतदशांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—चौबिस तीर्थंकर का तीर्थ, उनमें हो दश दश मुनि ईश।
घोरोपसर्ग सहनकर मरे, अनुत्तर में इन्द्र अवतरे।।
दोहा—अनुत्तरोपपादिक दश, अंग जजूँ सुखकार।
पद हैं बानवे लाख अरु, चव्वालीस हजार।।९।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतअनुत्तरोपपादिकदशांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई—आक्षेपिणि विक्षेपिणि तथा, संवेदनि निर्वेदनि कथा।
नष्ट मुष्टि चिंतादिक प्रश्न, वर्णन करता है यह अंग।।
दोहा—इसमें पद तिरानवे लाख व सोल हजार।
प्रश्नव्याकरण अंग को, जजूँ मिले सुखसार।।१०।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतप्रश्नव्याकरणांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
चौपाई—शुभ वर अशुभ कर्मफल पाक, वर्णन करता अंग विपाक।
द्रव्य क्षेत्र काल अरु भाव, इनके आश्रय कहे स्वभाव।।
दोहा—इस विपाकसूत्रांग में पद हैं एक करोड़।
लाख चुरासी भी कहें, जजूँ सदा कर जोड़।।११।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतविपाकसूत्रांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
चौपाई—तीन शतक त्रेसठ मत भिन्न, उनका वर्णन करे अखिन्न।
नाना भेद सहित यह अंग, दृष्टिवाद नाम यह अंत।।
दोहा—इक सौ आठ करोड़ अरु पद हैं अड़सठ लाख।
छप्पन हजार पाँच भी, जजूँ नमाकर माथ।।१२।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतदृष्टिवादांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(परिकर्म के ५ अर्घ्य)

—शंभु छंद—

इस दृष्टिवाद के पाँच भेद, परिकर्म सूत्र प्रथमानुयोग।
पूरबगत अरु चूलिका कहीं, इनमें भी कहे प्रभेद योग।।
पहले परिकर्म के पाँच भेद, उनमें शशि प्रज्ञप्ती पहला।
उसमें पद छत्तिस लाख पाँच, हजार जजूँ ले अर्घ भला।।१३।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतचन्द्रप्रज्ञप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
दूजा सूरज प्रज्ञप्ति कहा, परिकर्म सूर्य से संबंधी।
आयू मंडल परिवार ऋद्धि, अरु गमन अयन दिन-रात विधी।।
इन सबका वर्णन करता यह, इसको भक्ती से पूजूँ मैं।
पद पाँच लाख अरु तीन सहस, इन वंदत भव से छूटूँ मैं।।१४।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतसूर्यप्रज्ञप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रज्ञप्ती जंबूद्वीप नाम, यह मेरु कुलाचल क्षेत्रादिक।
वेदिका सरोवर नदी भोग भू जिनमंदिर सुरभवनादिक।।
इस जंबूद्वीप के मध्य विविध, रचना का वर्णन करता है।
पद तीन लाख पच्चीस सहस, इनका अर्चन भव हरता है।।१५।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतजंबूद्वीपप्रज्ञप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
इस मध्य लोक में द्वीप और, सागर हैं संख्यातीत कहे।
किसमें क्या है? यह सब वर्णे, व्यंतर आदिक आवास कहे।।
इसमें पद बावन लाख तथा, छत्तीस हजार बखाने हैं।
हम भक्ती से पूजें इसको, जिससे भव भव दुख हाने हैं।।१६।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतद्वीपसागरप्रज्ञप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
व्याख्या प्रज्ञप्ती परीकर्म, जीवाजीवादिक द्रव्यों को।
भव्यों व अभव्यों सिद्धों को, वर्णे बहु वस्तू भेदों को।।
इसमें पद लाख चुरासी अरु, छत्तीस हजार बखाने हैं।
हम इसकी पूजा करके ही, निज आत्मा को पहचाने हैं।।१७।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतव्याख्याप्रज्ञप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सूत्र का अर्घ्य)

उस दृष्टिवाद का भेद दूसरा, सूत्र नाम का माना है।
है जीव अबंधक अवलेपक, इत्यादिक करे बखाना है।।
यह क्रिया अक्रिया वादों को, अरु विविध गणित को वर्णे है।
पद हैं अट्ठासी लाख कहे, इसको पूजूँ भवतरणी ये।।१८।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतदृष्टिवादभेदसूत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(प्रथमानुयोग का अर्घ्य)

तीर्थंकर चक्री हलधर अरु, नारायण प्रतिनारायण हैं।।
त्रेसठ ये शलाकापुरुष कहे, इनके चरित्र को वर्णें ये।।
जिनवर विद्याधर ऋद्धीधर, मुनियों राजादिक पुरुषों को।
वर्णे पद इसमें पाँच सहस, प्रथमानुयोग पूजूँ इसको।।१९।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतदृष्टिवादभेदप्रथमानुयोगाय अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

(१४ पूर्व के अर्घ्य)

चौथा है भेदपूर्व गत जो, इसके भी चौदह भेद कहे।
उत्पाद पूर्व पहला यह भी, उत्पत्ति नाश स्थिति कहे।।
सब द्रव्यों की पर्यायों को, यह वर्णे इसको पूजूँ मैं।
इसमें पद एक करोड़ कहे, वंदत भव दुख से छूटूँ मैं।।२०।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतउत्पादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्रायणीय पूरब दूजा, यह सुनय सात सौ अरु दुर्नय।
छह द्रव्य पदार्थों को वर्णे, इसमें पद छ्यानवे लाख अभय।।
इस द्वितिय पूर्व को पूजूँ मैं, इसका कुछ अंश आज भी है।
षट्खण्डागम जो सूत्रग्रंथ, उन भक्ती भव भय हरती है।।२१।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतअग्रायणीयपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीर्यानुवाद है तृतिय पूर्व, यह आत्भ वीर्य परवीर्यों को।
तप वीर्यादिक को कहता है, पद सत्तर लाख इसी में हों।।
इसकी भक्ती से शक्ति बढ़े फिर, युक्ति मिले शिवमारग की।
फिर ज्ञान पूर्ण हो मुक्ति मिले, मैं पूजा करूँ सतत इसकी।।२२।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतवीर्यानुप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व, स्वद्रव्य क्षेत्र कालादिक से।
सब वस्तू का अस्तित्व कहे, नास्तित्व अन्य द्रव्यादिक से।।
यह दुर्नय का खंडन करके, नय द्वारा विधि प्रतिषेध कहे।
इसमें पद साठ लाख मानें, इसको पूजत सम्यक्त्व लहे।।२३।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतअस्तिनास्तिप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

जो ज्ञानप्रवाद नाम पूरब, प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणों का।
मति श्रुत अवधि मनपर्यय अरु, केवल इन पाँचों ज्ञानों का।।
बहुभेद प्रभेद सहित वर्णे, इसको पद पूजत ज्ञान पूर्ण।
इसमें पद इक कम एक कोटि, इस वंदत हो अज्ञान चूर्ण।।२४।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतज्ञानप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह सत्यप्रवाद पूर्व दशविध, सत्यों का वर्णन करता है।
यह सप्तभंग से सब पदार्थ का, सुन्दर चित्रण करता है।।
इसके पूजन से झूठ कपट, दुर्भाषायें नश जाती हैं।
पद एक कोटि छह हैं पूजूँ, दिव्यध्वनि वश हो जाती है।।२५।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतसत्यप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मा निश्चय से शुद्ध कहा, फिर भी अशुद्ध संसारी है।
व्यवहार नयाश्रित ही कर्मों का, कर्ता है भवकारी है।।
यह आत्मप्रवाद पूर्व कहता, इसमें पद छब्बिस कोटि कहे।
इसको पूजत ही आत्मनिधी, मिलती है जो भवदुःख दहे।।२६।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतआत्मप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह कर्मप्रवाद पूर्व नाना विध, कर्मों का वर्णन करता।
ईर्यापथ कर्म कृतीकर्मों को, अधः कर्म को भी कहता।।
इसमें पद एक करोड़ लाख, अस्सी हैं इसको पूजूँ मैं।
निज पर का भेद ज्ञान करके, इन आठ करम से छूटूँ मैं।।२७।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतकर्मप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व, वह द्रव्य क्षेत्र कालादिक से।
नियमित व अनियमित कालों तक, बहुत्याग विधि को बतलाके।।
वस्तू सदोष का त्याग करो, निर्दोष वस्तु भी तप रूचि से।
पद हैं चौरासी लाख कहे, पूजूँ इसको मैं बहु रुचि से।।२८।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतप्रत्याख्यानप्रवादपूर्वाद अर्घ्यं निर्वपामीति स्वहा।

यह विद्यानुप्रवाद रोहिणी, आदिक महविद्या पांच शतक।
अंगुष्ठ प्रसेनादिक विद्या, मानी हैं लघु ये सात शतक।।
इनके सब साधन विधि आदि को, वर्णे इसको जजूँ यहाँ।
पद एककोटि दशलाख कहे, इस पढ़ च्युत हों कुछ साधु यहाँ।।२९।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतविद्यानुप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्याणप्रवाद पूर्व वर्णे शशि सूर्य ग्रहादिक गमन क्षेत्र।
अष्टांगमहान निमित्तादिक पद इसमें छब्बिस कोटि मात्र।।

तीर्थंकर के कल्याणक को, चक्री आदिक के वैभव को।
यह कहता इसको पूजें हम, इससे कल्याण हमारा हो।।३०।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतकल्याणप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह प्राणावाय प्रवाद पूर्व, इंद्रिय बल आयु उच्छवासों का।
अपघात मरण अरू आयुबंध, आयू अपकर्षण आदी का।।
यह आयुर्वेद के अष्ट अंग का, विस्तृत वर्णन है करता।
इसमें पद तेरह कोटि इसे, पूजत ही स्वास्थ्य लाभ मिलता।।३१।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतप्राणावायप्रवादपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो नृत्यशास्त्र संगीतशास्त्र, व्याकरण छंद अरू अलंकार।
पुरुषादि के लक्षण कहता, जिसमें नवकोटी पद विचार।।
सो है किरिया विशाल पूरब, इसको जो रुचि से भजते हैं।
वे सब शास्त्रों में हों प्रवीण, फिर स्वपर भेद को भजते हैं।।३२।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतक्रियाविशालपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिकर्म और व्यवहार रज्जुराशि गुणकार वर्ग घन को।
बहु बीजगणित को भी वर्णे, कहता है मुक्ती स्वरूप को।।
पद बारह कोटि पचास लाख, इसको पूजूँ ले अर्घ भले।
यह लोक बिंदुसार पूरब, इसको वंदत लोकाग्र मिले।।३३।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतलोकबिंदुसारपूर्वाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(५ चूलिका के ५ अर्घ्य)

दृष्टिवाद का भेद चूलिका, पाँच भेद भी उसके हैं।
जलगता पहला जल में स्थलवत् चलना इत्यादिक वर्णे हैं।।
जलस्तंभन के मंत्र तंत्र तप आदि, अग्नि भक्षण आदिक।
पद दो करोड़ नवलाख नवासी सहस द्विशत पूजूँ नितप्रति।।३४।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतजलगताचूलिकायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो स्थलगता चूलिका है, मेरू कुलपर्वत क्षेत्रों को।
उन पर गमनादिक मंत्र तंत्र, तप आदिक बहुविधि कहती वो।।

पद दो करोड़ नव लाख, नवासी हजार दो सौ इसमें हैं।
इसको पूजूँ मैं अर्घ लिये, यह साधन भवदधि तरने में।।३५।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतस्थलगताचूलिकायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो मायागता चूलिका वह, माया का खेल सिखाती है।
बहु इन्द्रजाल क्रीड़ाओं की, मंत्रादि विधी बतलाती है।।
पद दो करोड़ नव लाख नवासी, हजार दो सौ इसमें हैं।
मैं जजूँ इसे यह कुशल सदा, सब जग की माया हरने में।।३६।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतमायागताचूलिकायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह रूपगता चूलिका सिंह गज, घोड़ा मनुजादिक बहुविध।
रूपों को धरने के मंत्रों, तप आदिक को वर्णे नितप्रति।।
पद दो करोड़ नव लाख नवासी, हजार दो सौ माने हैं।
मैं जजूँ मिले मुझ आत्मरूप, मुझको पररूप हटाने हैं।।३७।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतरूपगताचूलिकायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आकाशगता चूलिका सदा, नभ में गमनादि सिखाती है।
बहुविध के मंत्र तंत्र तप के, साधन की विधी बताती है।।
पद दो करोड़ नव लाख नवासी, हजार दो सौ से वर्णे।
मैं इस आशा से जजूँ मिले, मुझे, लोकाकाश अग्र क्षण में।।३८।।
ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गतआकाशगताचूलिकायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(१४ अर्घ्य के अंग बाह्य का पूर्णार्घ्य)

—दोहा—

अंगबाह्य के भेद हैं, चौदह शास्त्र प्रसिद्ध।
नाम प्रकीर्णक से यही, सामायिक आदीक।।

—शंभु छंद—

सामायिक चतुर्विंशतिस्तवन, वंदना प्रतिक्रमण चार मानों।
वैनयिक तथा कृतिकर्म व दश-वैकालिक उत्तराध्ययन जानों।।

नवमां है कल्प्यव्यवहार व कल्प्या-कल्प्य महाकल्प्य संज्ञक हैं।
पुण्डरीक महापुण्डरीक चौदवें निषिद्धिका को प्रणमन हैं।।१।।

ॐ ह्रीं सामायिक-चतुर्विंशतिस्तव-वंदना-प्रतिक्रमण-वैनयिक-कृतिकर्म-दशवैकालिक-उत्तराध्ययन-कल्प्यव्यवहार-कल्प्याकल्प्य-महाकल्प्य-पुण्डरीक-महापुण्डरीक-निषिद्धिकानामचतुर्दशांगबाह्यप्रकीर्णक-श्रुतज्ञानेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्णार्घ्य-शंभु छंद

यह द्वादश अंग व अंग बाह्य, इन रूप दिव्यध्वनि जिनवर की।
हैं जितने जैन शास्त्र अब भी, सब साररूप ध्वनि जिनवर की।।
गंगा का जल घट में भर लें, वैसे हि ग्रंथ जिनवर वाणी।
मैं पूजूँ पूरण अर्घ लिये, इस युग में यह ही कल्याणी।।१।।

ॐ ह्रीं द्वादशांगअंगबाह्यसर्वश्रुतज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य-दोहा—

सर्व वाङ्मय में कहे, चारनुयोग प्रसिद्ध।
प्रथम करण अरु चरण अरु द्रव्य नाम से सिद्ध।।२।।

ॐ ह्रीं द्वादशांगान्तर्गतचतुरनुयोगेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य-शंभु छंद—

जितने जिनश्रुत उपलब्ध आज, जिनमंदिर मठ ग्रंथालय में।
गुरुपरम्परा से प्राप्त लिखा, भवभीरु महाव्रति मुनिजन ने।।
सर्व अंग पूर्व के अंश-अंश, जिनवर की वाणी मानी है।
मैं पूजूँ अर्घ चढ़ाकर के, ये स्वात्म सुधारस दानी है।।३।।

ॐ ह्रीं गुरुपरम्परागतजिनमंदिरमठग्रन्थालयस्थितसर्वजिनशास्त्रेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

जाप्य-ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो नम:।

जयमाला

दोहा— **द्वादशांग हे वाङ्मय! श्रुतज्ञानामृतसिंधु।**
गाऊँ तुम जयमालिका, तरूं शीघ्र भवसिंधु।।१।।

—शंभु छंद—

जय-जय जिनवर की दिव्यध्वनी, जो अनक्षरी ही खिरती है।
जय-जय जिनवाणी श्रोताओं को, सब भाषा में मिलती है।।
जय जय अठरह महाभाषाएं, लघु सात शतक भाषाएं हैं।
फिर भी संख्यातों भाषा में, सब समझें जिन महिमा ये है।।२।।

जिनदिव्यध्वनी को सुनकर के, गणधर गूंथे द्वादश अंग में।
बारहवें अंग के पाँच भेद, चौथे में चौदह पूर्ण भणें।।
पद इक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस पाँच।
मैं इनका वंदन करता हूँ, मेरा श्रुत में हो पूरणांक।।३।।

इक पद सोलह सौ चौंतीस कोटी, और तिरासी लाख तथा।
है सात हजार आठ सौ अट्ठासी, अक्षर जिन शास्त्र कथा।।
इतने अक्षर का इक पद तब, सब अक्षर के जितने पद हैं।
उनमें से शेष बचें अक्षर, वह अंगबाह्य श्रुत नाम लहे।।४।।

जो आठ कोटि इक लाख आठ, हजार एक सौ पचहत्तर।
चौदह प्रकीर्णमय अंग बाह्य, के इतने ही माने अक्षर।।
यह शब्दरूप अरू ग्रंथरूप, सब द्रव्यश्रुत कहलाता है।
जो ज्ञानरूप है आत्मा में, वह कहा भावश्रुत जाता है।।५।।

जिनको केवलज्ञानी जानें, पर वच से नहिं कह सकते हैं।
ऐसे पदार्थ हैं अनंतानंत, जो तीन भुवन में रहते हैं।।
उनसे भि अनन्तवें भाग प्रमित, वचनों से वर्णित हों पदार्थ।
इन प्रज्ञापनीय से भि अनन्तवें, भाग कथित श्रुत में पदार्थ।।६।।

फिर भी यह श्रुत सब द्वादशांग, सरसों सम इसका आज अंश।
इनमें से भी लवमात्र ज्ञान, हो जावे तो भी जन्म धन्य।।

यह जिन आगम की भक्ती ही, निज पर का भान कराती है।
यह भक्ती ही श्रुतज्ञान पूर्ण कर, श्रुतकेवली बनाती है।।७।।
श्रुतज्ञान व केवलज्ञान उभय, ज्ञानापेक्षा हैं सदृश कहे।
श्रुतज्ञान परोक्ष लखे सब कुछ, बस केवलज्ञान प्रत्यक्ष लहे।।
अंतर इतना ही तुम जानो, इसलिए जिनागम आराधो।
स्वाध्याय मनन चिंतन करके, निजआत्म सुधारस को चाखो।।८।।
इन ढाईद्वीप में कर्मभूमि में, जितने जिनवर होते हैं।
उन सबकी ध्वनि जिनआगम है, इससे अघमल को धोते हैं।।
जिनवचपूजा जिनपूजा सम, यह केवल ज्ञान प्रदाता है।
नित पूजूँ ध्याऊँ गुण गाऊँ, यह भव्यों को सुखदाता है।।९।।
है नाम भारती सरस्वती, शारदा हंसवाहिनी तथा।
विदुषी वागीश्वरी और कुमारी, ब्रह्मचारिणी सर्वमता।।
विद्वान जगन्माता कहते, ब्राह्मणी व ब्रह्माणी वरदा।
वाणी भाषा श्रुतदेवी गौ, ये सोलह नाम सर्व सुखदा।।१०।।
हे श्रुतमात:! अमृतझरिणी, मेरा मन निर्मल शांत करो।
स्याद्वाद सुधारस वर्षाकर, सब दाह हरो मन तृप्त करो।।
हे जिनवाणी माता मुझ, अज्ञानी की नित रक्षा करिये।
दे केवल 'ज्ञानमती' मुझको, फिर भले उपेक्षा ही करिये।।११।।

दोहा— भूत भविष्यत् संप्रति, त्रैकालिक जिनशास्त्र।
त्रिकरण शुद्धी मैं नमूँ, मिले सिद्धि सर्वार्थ।।१२।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधि-सप्तत्यधिकशतकर्मभूमिषुश्रीजिनेन्द्रदेवमुख-कमलविनिर्गतद्वादशांगअंगबाह्यसर्वजिनागमेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

शेरछंद— जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवोनिधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमति' से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंत सौख्य भरेंगे।।१।।

।।इत्याशीर्वाद:।।

(पूजा नं.-9)
जिनचैत्य पूजा

—स्थापना-नरेन्द्र छंद—

त्रिभुवन में जिनप्रतिमा शाश्वत, असंख्यात हैं वर्णित।
ढाई द्वीप में कृत्रिम प्रतिमा, सुर नर निर्मित अगणित।।
इन सबका आह्वानन कर मैं, भक्ति भाव से ध्याऊँ।
जिनप्रतिमा जिनसदृश पूज्य हैं, वंदन कर सुख पाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टक-चौबोल छंद

पद्माकर का जल अति शीतल, पद्म पराग सुवास मिला।
राग भाव मल धोवन कारण, धार करूँ मन कंज खिला।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर घिस कर्पूर मिलाया, भ्रमर पंक्तियाँ आन पड़ें।
जिनप्रतिमा पूजन से नशते, कर्मशत्रु भी बड़े-बड़े।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चंद्र चन्द्रिका सम सित तंदुल, पुँज चढ़ाऊँ भक्ति भरे।
अमृत कण सम निज समकित गुण, पाऊँ अतिशय शुद्ध खरे।।

नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पवृक्ष के सुमन सुगंधित, पारिजात वकुलादि खिले।
कामबाण विजयी जिनवल्लभ, चरण जजत नवलब्धि मिले।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रसगुल्ला रसपूर्ण अंदरसा, कलाकंद पयसार लिये।
अमृतपिंड सदृश नेवज से, जिनपद पंकज पूज किये।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हेमपात्र में घृत भर बत्ती, ज्योति जले तम नाश करे।
दीपक से आरति करते ही, हृदय पटल की भ्रांति हरे।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्निपात्र में धूप जलाकर, अष्टकर्म को दग्ध करें।
निज आतम के भावकर्म मल, द्रव्यकर्म भी भस्म करें।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल अंगूर अनंनासादिक, सरस मधुर ले थाल भरे।
नव क्षायिक लब्धी फल इच्छुक, पूजूँ प्रभु पादाब्ज खरे।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत माला चरु, दीप धूप फल अर्घ्य लिया।
त्रिभुवन पूजित पद के हेतू, तुम पद वारिज अर्घ्य किया।।
नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस कहीं।
नव सौ अड़तालिस असंख्य भी, कृत्रिम अगणित जजूँ यहीं।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनबिंबसमूहाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—सोरठा—

यमुना सरिता नीर, कंचन झारी में भरा।
मिले शीघ्र भवतीर, जिनपद में धारा करूँ।।१०।।

शांतये शांतिधारा।

वकुल मालती फूल, सुरभित निज कर से चुने।
करूँ स्वात्म अनुकूल, पुष्पांजलि से पूजते।।११।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जिनप्रतिमा के अर्घ्य (२४ अर्घ्य)

—सोरठा—

शाश्वत जिनवर बिंब, सौ इंद्रों से वंद्य हैं।
जजत मिले सुखकंद, पुष्पांजलि से पूजहूँ।।१।।

अथ मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

अधोलोक की शाश्वत जिनप्रतिमाओं के अर्घ्य

भवनवासि के जिनभवनों में, जिनप्रतिमाएं रत्नमयी।
आठ अरब तेंतिस करोड़, छियत्तर लाख प्रमाण कहीं।।

हाथ जोड़कर शीश झुकाकर, करूँ वंदना भक्ती से।
क्षायिक सम्यक्रत्न प्राप्त कर, कर्म हनूँ निज शक्ती से।।१।।

ॐ ह्रीं भवनवासि देवानां सप्तकोटिद्वासप्ततिलक्षजिनालयेषु स्थित अष्टार्बुदत्रयस्त्रिंशत्कोटिषट्सप्ततिलक्षजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवनवासी के चैत्यवृक्ष प्रतिमा का अर्घ्य

भवनवासि के दश भेदों में, दशविध चैत्यवृक्ष मानें।
सबमें चालीस चालीस प्रतिमा, सब मिल दो सौ सरधाने।।
पद्मासनयुत वीतराग छवि, प्रातिहार्य से शोभित हैं।
रत्नमयी जिनप्रतिमा वंदूँ, वांछित फलदायी शुभ हैं।।२।।

ॐ ह्रीं भवनवासिदेवसंबंधि दशचैत्यवृक्षस्थित द्विशतजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मध्यलोक की शाश्वत जिनप्रतिमाओं के अर्घ्य

एक एक जिनप्रतिमा आगे, एक एक मानस्तंभ हैं।
प्रतिदिश में प्रतिमा सात-सात सब इकमें सत्ताइस हैं।।
इन दो सौ मानस्तंभों में, छप्पन सौ जिनप्रतिमाएँ हैं।
इन सबको पूजूँ अर्घ्य चढ़ा, ये समकित रत्न दिलाये हैं।।३।।

ॐ ह्रीं भवनवासिदेवसंबंधि-चैत्यवृक्षजिनप्रतिमासन्मुखद्विशतमानस्तंभ-स्थितषट्पंचाशत्सहस्रजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जंबूद्वीप के ७८ मंदिर की प्रतिमाओं का अर्घ्य

—शंभु छंद—

जम्बूद्वीप के अठतर जिनगृह, वहाँ जिनप्रतिमाएं शोभ रहीं।
ये आठ हजार चार सौ चौबिस जिनमूर्ती मन मोह रहीं।
गणधर मुनिगण सुरगण नरपति, खगपति भी वंदन करते।
जो पूजें ध्यावें भक्ति करें, वे यम का बंधन हरते हैं।।४।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-अष्टसप्ततिजिनालयमध्यविराजमान-अष्ट-सहस्रचतु:शतचतुर्विंशति जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्व धातकीखण्ड में ७८ जिनमंदिर की प्रतिमाओं का अर्घ्य

—शंभु छंद—

पूर्व धातकी में जिनगृह में, जिनप्रतिमा मणिमय राजे हैं।
आठ हजार चार सौ चौबिस, संख्या है शाश्वतकी हैं।।
गणधर मुनिगण चक्रवर्ति नर, इनकी स्तुति करते हैं।
मैं भी पूजूँ भक्ति भाव से, इनसे मनरथ फलते हैं।।५।।

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अष्टसप्ततिजिनालयमध्यविराजमान-अष्टसहस्रचतु:शतचतुर्विंशति जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम धातकीखण्ड में ७८ जिनमंदिर की जिनप्रतिमा का अर्घ्य

अपर धातकी अठत्तर जिनगृह, जिनप्रतिमाएँ शाश्वतकी।
ये पाँच शतक धनु तुंग कहीं, पद्मासन मुद्रा सौम्य छवी।।
निज स्वात्म सुधारस आस्वादी, चारण ऋषि वंदन करते हैं।
इन आठ हजार चार सौ चौबिस का हम अर्चन करते हैं।।६।।

ॐ ह्रीं पश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधि-अष्टसप्ततिजिनालयमध्य-विराजमान-अष्टसहस्रचतु:शतचतुर्विंशति जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्व पुष्करार्ध द्वीप में ७८ जिनमंदिरों की जिनप्रतिमा का अर्घ्य

पूरब पुष्कर में जिनप्रतिमा, चौरासी सौ चौबिस सोहें।
सुरपति जाकर वंदन करते, ऋषि गणधर का भी मन मोहें।।
इनकी भक्ती भवदधितरणी, निज आत्म सुधारस निर्झरणी।
जो इसमें अवगाहन करते, वे पा लेते मुक्ती सरणी।।७।।

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधि-अष्टसप्ततिजिनालयमध्यविराजमान-अष्टसहस्रचतु:शतचतुर्विंशति जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के ७८ जिनमंदिरों की जिनप्रतिमा के अर्घ्य

इस अपर पुष्कर में अकृत्रिम, जैनमंदिर सोहते।
प्रत्येक में जिनबिंब इक सौ-आठ मुनिमन मोहते।।

चौरासि सौ चौबिस जिनेश्वर, को यहाँ मैं नित जजूँ।
निज सौख्य परमानंद हेतू, आपको अतिशय भजूँ।।८।।

ॐ ह्रीं पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप संबंधि-अष्टसप्ततिजिनालयमध्यविराजमान-अष्टसहस्रचतु:शतचतुर्विंशति जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धातकी पुष्करार्ध द्वीप के ४ इष्वाकारपर्वत के मंदिरों की प्रतिमा के अर्घ्य

रोला छंद— **इष्वाकृति चउ अद्रि, चउ जिनगृह में प्रतिमा।**
चार शतक बत्तीस, नमूँ नमूँ गुण महिमा।।
मुनिवर गण शिर नाय, वंदें नित सुखकारी।
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय, शीघ्र वरूँ शिवनारी।।९।।

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड-पुष्करार्धद्वीपसंबंधि-चतुरिष्वाकारपर्वतोपरिचतुर्जिनालयमध्यविराजमान-चतु:शतद्वात्रिंशद् जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मानुषोत्तर पर्वत की जिनप्रतिमा का अर्घ्य

गीता छंद— **मनुजाद्रि पर जिनधाम में, जिनमूर्तियाँ वररत्न की।**
ये चार सौ बत्तीस हैं, पद्मासनों से राजतीं।।
इन वीतरागी नग्न जिनवर, मूर्तियों की वंदना।
जो भव्य भक्ती से करें, वे करें यम की तर्जना।।१०।।

ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वतस्थितचतुर्दिक्-चतु:सिद्धकूटजिनालयमध्यविराजमान चतु:शतद्वात्रिंशज्जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदीश्वर द्वीप की जिनप्रतिमाओं का अर्घ्य

दोहा— **नंदीश्वर बावन भवन, जिनप्रतिमा अभिराम।**
छप्पन सौ सोलह जजूँ, शत शत करूँ प्रणाम।।११।।

ॐ ह्रीं नंदीश्वरद्वीपस्थ-द्वापंचाशज्जिनालयमध्यविराजमान पंचसहस्रषट्शतषोडशजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुण्डलवर पर्वत की जिनप्रतिमा का अर्घ्य

दोहा— **कुण्डलगिरि चउ जिनभवन, जिनप्रतिमाएं सिद्ध।**
चार शतक बत्तीस हैं, जजत कर्म सब सिद्ध।।१२।।

ॐ ह्रीं कुण्डलवरपर्वतस्थितचतुर्जिनालयमध्यविराजमान चतु:शतद्वात्रिंशज्जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रुचकवरगिरि के चार मंदिर की मूर्तियों का अर्घ्य

—गीता छंद—

नग रुचकवर जिनधाम में, जिनमूर्तियाँ मणिरत्न की।
सब चार सौ बत्तीस हैं, सुर अप्सराएं वन्दतीं।।
जल गंध आदिक अर्घ्य लेकर, पूजते निधियाँ मिलें।
मनकामना सब पूर्ण होकर, हृदय की कलियाँ खिलें।।१३।।

ॐ ह्रीं रुचकवरपर्वतस्थितचतुर्दिक्जिनालयमध्यविराजमानचतु:शतद्वात्रिंशज्जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य—

ये मध्यलोक के चार शतक, अट्ठावन जिनमंदिर शाश्वत।
इनमें उनचास हजार चार सौ चौंसठ जिनप्रतिमा भास्वत्।।
जलगंध आदि में चांदी के, सोने के पुष्प मिलाऊँ मैं।
पूर्णार्घ्य चढ़ाऊँ भक्ती से, रत्नत्रय निधिवर पाऊँ मैं।।१।।

ॐ ह्रीं मध्यलोक जिनालयमध्यविराजमान-एकोनपंचाशत्सहस्रचतु:-शतचतुष्षष्टिजिनप्रतिमाभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

व्यन्तर देवगृहों में असंख्यात जिनमंदिरों की जिनप्रतिमा के अर्घ्य

—शंभु छंद—

अठविध व्यन्तरसुर भवनों में, जिनगृह में जिनप्रतिमा सुन्दर।
सब रत्नमयी हैं असंख्यात, उन भक्ती भविजन क्षेमंकर।।
मैं बहिरातमता को तजकर, अंतर आत्मा का ध्यान करूँ।
इन पूजा संस्तुति कर-करके, परमात्म अवस्था प्राप्त करूँ।।१४।।

ॐ ह्रीं अष्टविधव्यन्तरनिलयस्थित-असंख्यातजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्यवृक्ष के जिनप्रतिमाओं के अर्घ्य

व्यंतर अष्टेन्द्र चैत्यतरु[१] में, इक सौ अट्ठाइस जिनप्रतिमा।
ये रत्नमयी शाश्वत अनुपम अठ प्रातिहार्य संयुत प्रतिमा।।

१. आठ प्रकार के व्यंतर आठ इन्द्रों के यहाँ चैत्यवृक्ष में १६-१६ जिनप्रतिमाएँ हैं, सब मिलकर ८×१६=१२८ हैं।

इनकी भक्ती पूजा करते, भव भव के पाप अनंत टलें।
दुख रोग शोक दारिद्र्य नशें, संपूर्ण मनोरथ फलें भले।।१५।।

ॐ ह्रीं अष्टविधव्यन्तरदेवनिलयसंबंधि अष्टचैत्यवृक्षस्थित अष्टाविंशत्युत्तरशतजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रत्येक जिनेन्द्रबिंब सन्मुख, मानस्तंभ एक-एक सुंदर।
ये त्रयकटनी ऊपर स्थित, परकोटे तीन सहित मनहर।।
घंटा किंकिणि मोती माला, ध्वज चंवर छत्र से संयुत हैं।
प्रतिदिश में जिनप्रतिमाएं हैं, मैं उन्हें जजूँ वे सुखप्रद हैं।।१६।।

ॐ ह्रीं अष्टविधव्यन्तरदेवगृह चैत्यवृक्षस्थितजिनबिंब सन्मुखएकशतअष्टाविंशतिमानस्तंभविराजमानसर्वजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ढाईद्वीप के ज्योतिष विमान जिनगृह की जिनप्रतिमा का अर्घ्य

—दोहा—

ढाईद्वीप में एक सौ, बत्तीस चंद्र विमान।
सबके परिकर देवगृह, सबमें जिनवर धाम।।
नमूँ नमूँ कर जोड़ के, शीश नमाकर आज।
प्रतिगृह इक सौ आठ जिन-बिंब नमूँ सुखकाज।।१७।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपद्वयसमुद्रसंबंधि-एकशतद्वात्रिंशत् चंद्रविमानसूर्य-नक्षत्र-ग्रह-तारागणविमानस्थितजिनालयमध्यविराजमानसर्वजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ढाई द्वीप से बाहर ज्योतिष के असंख्यात जिनप्रतिमा का अर्घ्य

—गीता छंद—

चन्द्र सूर्य गृह नखत तारका, ये सब संख्यातीत प्रमाण।
सबके मध्य जिनालय सुंदर, शाश्वत शोभें महिमावान।।
प्रति जिनगृह में प्रतिमा हैं इक सौ आठ-आठ पद्मासन जान।
सब जिनप्रतिमाओं को पूजूँ मैं, नित नवमंगल सुखदान।।१८।।

ॐ ह्रीं मानुषोत्तर पर्वतबाह्यसर्वद्वीपसमुद्रसंबंधि-असंख्यातचन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारागण विमानस्थित सर्वासंख्यातजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊर्ध्वलोक के अर्घ्य

वैमानिक देवों की जिनप्रतिमाओं का अर्घ्य

—शंभु छंद—

वैमानिक के चौरासि लाख, सत्यानवे सहस तेइस जिनगृह।
इन सबमें इक सौ आठ-आठ प्रतिमाएं रत्नमयी अतिशय।।
ये कोटि इक्यानवे लाख छियत्तर, सहस अठत्तर चार शतक।
चौरासी जिनवर प्रतिमाएं, मैं मन वच तन से नमूँ सतत।।१९।।

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोके वैमानिकदेवविमानस्थित-एकनवतिकोटि-षट्सप्ततिलक्ष-अष्टसप्ततिसहस्रचतु:शतचतुरशीतिजिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्यवृक्षों की प्रतिमाओं का अर्घ्य

सब इन्द्रों के गृह के आगे, न्यग्रोध वृक्ष अतिशय ऊँचे।
पृथ्वीकायिक हैं रत्नमयी, ये चैत्यवृक्ष अतिशय शोभें।।
प्रत्येक दिशा में एक-एक, जिनप्रतिमा रत्नमयी राजें।
इन चैत्यवृक्ष को नित पूजें, पूजत ही भवपातक भाजें।।२०।।

ॐ ह्रीं प्रत्येक इन्द्रभवन सन्मुख स्थित न्यग्रोधचैत्यवृक्ष चतुर्दिक् चतुश्चतुर्जिनप्रतिमाभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन लोक के सर्व अकृत्रिम जिनमंदिरों की प्रतिमाओं का पूर्णार्घ्य

—पूर्णार्घ्य-नरेन्द्र छंद—

त्रिभुवन के जिनमंदिर शाश्वत, आठ कोटि सुखराशी।
छप्पन लाख हजार सत्यानवे, चार शतक इक्यासी।।
प्रति जिनगृह में मणिमय प्रतिमा, इक सौ आठ विराजें।
भक्तिभाव से जजूँ यहाँ मैं, जन्म-मरण दुख भाजें।।१।।

—कुसुमलता छंद—

नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सत्ताइस सहस प्रमाण।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, शिवसुख हेतू करूँ प्रणाम।।

जल गंधादिक अर्घ्य सजाकर, भक्तिभाव से अर्चूं आज।
सर्व अमंगल दूर भगाकर, पाऊँ अनुपम सुख साम्राज।।२।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबंधिशाश्वतजिनालयमध्यविराजमान-नवशत-पंचविंशतिकोटि-त्रिपंचाशल्लक्ष-सप्तविंशतिसहस्र-नवशतअष्टचत्वारिंशत् शाश्वत जिनप्रतिमाभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

ढाईद्वीप की कृत्रिम जिनप्रतिमाओं के अर्घ्य

—नरेन्द्र छंद—

जंबूद्वीप के दक्षिण दिश में, भरत क्षेत्र सुखकारी।
छह खण्डों में आर्यखण्ड इक, कर्मभूमि अति प्यारी।।
इन्द्र चक्रवर्ती मानवगण, जिनमंदिर बनवाते।
उनकी जिनप्रतिमा को पूजत, कर्मशत्रु भग जाते।।२१।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिभरतक्षेत्रार्यखण्डस्थितत्रैकालिकसर्वकृत्रिम-जिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा— **जंबूद्वीप में भरतैरावत, बत्तिस क्षेत्र विदेहा।**
चौंतिस कर्मभूमि के कृत्रिम, बिंब जजूँ धर नेहा।।२२।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधि-चतुस्त्रिंशत्कर्मभूमिस्थितसर्वकृत्रिमजिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—शंभु छंद—

इक सौ सत्तर कर्मभूमि में, पर्वत वनखण्ड सरोवर में।
नदियों में कुँआ तालाबों में, गिरि गुफा कंदरा लेनी में।।
मणिरत्न स्वर्ण चांदी पत्थर, बालू आदिक की जिनप्रतिमा।
सुर नर निर्मित उत्कीर्ण आदि उन सबको जजूँ अतुल महिमा।।२३।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपद्वयसमुद्रसंबंधि-सप्तत्युत्तरशतकर्मभूमिषु जिनालय-मध्यविराजमान-पर्वतवनखण्ड सरोवरनदीकूपतडागगिरिगुफाकंदरालेनी आदि स्थानस्थितमणि-रत्नस्वर्णरजतपाषणादिनिर्मितभित्ति-उत्कीर्णादि-सर्वकृत्रिम-त्रैकालिकजिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इक सौ सत्तर विजयार्ध उपरि, विद्याधर मानव रहते हैं।
उनके बनवाये जिनमंदिर, जिनप्रतिमा सब दुख दहते हैं।।
उन सब त्रयकालिक को पूजूँ, वे अतिशय पुण्य प्रदाता हैं।
जो जिनभक्ती में लीन रहें, उनको वे मुक्ति विधाता हैं।।२४।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधि-सप्तत्यधिकशतविजयार्धपर्वतेषु विद्याधर-मनुजनिर्मितत्रैकालिकसर्वकृत्रिमजिनप्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्णार्घ्य-दोहा— **त्रयकालिक कृत्रिम सभी, जिनवर बिंब महान्।**
असंख्यात हैं मैं जजूँ, नित प्रति करूँ प्रणाम।।१।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपद्वयसमुद्रसंबंधि-त्रयकालिकअसंख्यातप्रमाणकृत्रिम-जिनप्रतिमाभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः।**

जयमाला

दोहा— **त्रिभुवन में जिनबिंब हैं, असंख्यात संख्यात।**
अकृत्रिम कृत्रिम सभी, नमूँ नमूँ नत माथ।।१।।

—शंभु छंद—

जय जय अकृत्रिम जिनप्रतिमा, नव सौ पचीस कोटी संख्या।
जय त्रेपन लाख सताइस सहस, नव सौ अड़तालिस जगवंद्या।।
व्यंतर ज्योतिष के भवनों में, ये संख्यातीत कहाती हैं।
ये अकृत्रिम अनादि अनिधन, प्रतिमा मुनिगण मन भाती है।।२।।
ये बिंब पाँच सौ धनुष तुंग, पद्मासन मणिमय राजें हैं।
बत्तीस युगल यक्ष दोनों, बाजू में चँवर ढुराते हैं।।
जिनप्रतिमा निकट श्रीदेवी, श्रुतदेवी की मूर्ती शोभें।
सानत्कुमार सर्वाण्ह यक्ष की, मूर्ती भविजन मन लोभे।।३।।
प्रत्येक बिंब के पास सुमंगल, द्रव्य एक सौ आठ-आठ।
भृंगार कलश, दर्पण चामर, ध्वज छत्र, व्यजन अरु सुप्रतिष्ठ।।

मानस्तंभों में चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष में जिनप्रतिमा।
अन्यत्र जहाँ भी जिनप्रतिमा, मैं नमूँ नमूँ अगणित महिमा।।४।।

जय जय अर्हंतों की प्रतिमा, जय जय सिद्धों की प्रतिमाएं।
जय जय आचार्य उपाध्यायों, की सर्वसाधु की प्रतिमाएं।।
जय जय तीर्थंकर की प्रतिमा, जय तीस चौबीसी की प्रतिमा।
जय बीस तीर्थंकर की प्रतिमा, जिनकी उपमाविरहित महिमा।।५।।

सुरगण भी कभी-कभी जिनगृह, जिनप्रतिमा की रचना करते।
नरपति खगपति साधारण नर, जिनप्रतिमा निर्मापित करते।।
माणिक्य नीलमणि गरुत्मणी, रत्नों की प्रतिमा बनवाते।
सोना चाँदी पीतल ताँबा, पाषाण आदि की बनवाते।।६।।

फिर पंचकल्याण प्रतिष्ठा कर, प्रतिमा को पूज्य बनाते हैं।
जिनवर के गुण आरोपण कर, वर प्राण प्रतिष्ठा करते हैं।।
ये मूर्ति अचेतन होकर भी, चेतन भगवान बने तब ही।
जिन भक्तों को वांछित देकर, चेतन भगवान करें तब ही।।७।।

कृत्रिम जिनमंदिर में भी हैं, माँ सरस्वती की प्रतिमाएँ।
जिनशासन यक्ष यक्षिणी की, अरु क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ।।
जय इक सौ सत्तर कर्मभूमि की, कृत्रिम जिनवर प्रतिमायें।
जिनसदृश कहीं जिनप्रतिमायें, इनको वंदत शिवसुख पायें।।८।।

दोहा—जितनी जिनप्रतिमा यहाँ, मुनिगण सुर नर वंद्य।
जजत स्वात्मसुख प्राप्त हो, ज्ञानमती आनंद।।९।।

ॐ ह्रीं जगत्त्रयवर्तिजिनबिम्बसमूहाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः

शेरछंद— जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवोनिधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमति' से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंत सौख्य भरेंगे।।१।।

।।इत्याशीर्वादः।।

(पूजा नं.-10)

जिनचैत्यालय पूजा

—अथ स्थापना-नरेन्द्र छंद—

त्रिभुवन के जिनमंदिर शाश्वत, आठ कोटि सुखराशी।
छप्पन लाख हजार सत्यानवे, चार शतक इक्यासी।।
व्यंतर ज्योतिष सुरगृह में हैं, असंख्यात जिनमंदिर।
ढाईद्वीप के कृत्रिम जिनगृह, पूजूँ सर्व हितंकर।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टक-स्रग्विणी छंद

गगन गंगानदी नीर झारी भरूँ।
नाथ के पाद में तीन धारा करूँ।।
सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गंध चंदन घिसा के कटोरी भरूँ।
नाथ पादाब्ज अर्चूं, सभी दुःख हरूँ।।
सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

धौत अक्षत शशी रश्मि सम श्वेत हैं।
जैनगृह अर्चना सर्वसुख हेत है।।

सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्य: अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुंद बेला सुगंधित कुसुम ले लिये।
जैनगृह अर्चना हेतु अर्पण किये।।
सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्य: पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

खीर बर्फी अंदरसा पुआ लायके।
नाथ के सामने चरु चढ़ाऊँ अबे।।
सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्य: नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप ज्योति लिये आरती मैं करूँ।
मोह हर ज्ञान की भारती मैं भरूँ।।
सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्य: दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप खेऊँ अबे धूपघट में जले।
कर्म निर्मूल हों ज्ञानज्योति मिले।।
सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्य: धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम अंगूर केला चढ़ाऊँ भले।
मोक्ष की आश सह सर्ववांछित फलें।।

सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्य: फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य में स्वर्ण चाँदी कुसुम ले लिये।
जैन मंदिर जजूँ सर्व सुख के लिए।।
सर्व शाश्वत अशाश्वत जिनालय जजूँ।
रत्नत्रय पायके स्वात्म अमृत चखूँ।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—सोरठा—

श्रीजिनवर पादाब्ज, शान्तीधारा मैं करूँ।
मिले स्वात्म साम्राज, त्रिभुवन में सुखशांति हो।।१०।।

शांतये शांतिधारा।

बेला हरसिंगार, कुसुमांजलि से पूजहूँ।
मिले सर्वसुखसार, त्रिभुवन की गुणसंपदा।।११।।

दिव्य पुष्पांजलि:।

अधोलोक जिनमंदिर अर्घ्य

जिन चैत्यालय अर्घ्य (२४ अर्घ्य)

भवनवासी देवों के सब मिल शाश्वत जिनगृह माने।
सात करोड़ सुलाख बहत्तर मणिमय सुंदर जाने।।
इनकी भक्ति वंदना करते कर्म कुलाचल नाशूँ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरितमय अभिनव ज्योति प्रकाशूँ।।१।।

ॐ ह्रीं भवनवासिभवनस्थितसप्तकोटिद्वासप्ततिलक्षजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मध्यलोक जिनमंदिर अर्घ्य

इस जंबूद्वीप में मेरु सुदर्शन पर सोलह जिनमंदिर है।
जंबू तरु शाल्मलि तरु के दो, बाकी पर्वत पर साठ कहे।।

ये सब अठत्तर जिनमंदिर, शाश्वत रत्नों के शोभे हैं।
इन सबको अर्घ्य चढ़ाकर के, पूजत ही अनुपम सुख हो है।।२।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिसुदर्शनमेरुजंबूतरुशाल्मलितरुकुलाचलादि-स्थितअष्टसप्ततिजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वीप धातकी खण्ड पूर्व में, कुल पर्वत छह मन मोहे हैं।
मेरु विदिश में चार कहे, गजदंत साधु मन मोहे हैं।।
सोलह गिरि वक्षार व चौंतिस रजताचल अति मनहारी।
इनके साठ जिनालय पूजूँ, वरूँ मोक्षरमणी प्यारी।।३।।

ॐ ह्रीं पूर्वधातकीखण्डद्वीपसंबंधिकुलाचलगजदन्तवक्षारविजयार्ध-पर्वतस्थितषष्टिजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इस अपरधातकी में मेरु, शुभ अचल नाम से अचलित है।
धातकि तरु शाल्मलि तरु सोहें, कुलपर्वत आदि साठ नग हैं।।
इन सबके जिनगृह अट्ठत्तर शाश्वत मणि स्वर्णमयी सोहें।
इनकी पूजा करते सुरगण, गणधर मुनिगण का मन मोहे।।४।।

ॐ ह्रीं अपरधातकीखण्डद्वीपसंबंधिमेर्वादिअष्टसप्ततिजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इस पुष्करार्ध में मंदरगिरि, चौथे मेरू पर जिनमंदिर।
पुष्करतरु शाल्मलितरु सोहें, कुलअद्रि आदि पर जिनमंदिर।।
कुल अट्ठत्तर शाश्वत जिनगृह, मैं नित परोक्ष वंदना करूँ।
सब रोग शोक दारिद्र नशा, मृत्यू की भी खंडना करूँ।।५।।

ॐ ह्रीं पूर्वपुष्करार्धद्वीपसंबंधिमेर्वादिस्थितअष्टसप्ततिजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम सुपुष्कर द्वीप में वरमेरु विद्युन्मालि है।
पुष्करतरु शाल्मलितरु कुलपर्वतादि विशाल हैं।।
इन पर अकृत्रिम अठत्तर जिनधाम पुण्य निधान हैं।
इनको जजूँ वर भक्ति से, ये मोक्ष सुख की खान हैं।।६।।

ॐ ह्रीं पश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधिमेर्वादिस्थितअष्टसप्ततिजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धातकिपुष्करद्वीप दक्षिण दिश में जानो।
इष्वाकार नगेश, अनुपम रूप बखानो।।
तापे जिनवरगेह, सिद्धकूट मनहारी।
पूजूँ अर्घ्य बनाय, जल फल से भर थारी।।७।।

ॐ ह्रीं धातकीपुष्करार्धद्वीपस्थदक्षिणोत्तरदिगिष्वाकारपर्वतस्थित-चतु:सिद्धकूटजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इस मानुषोत्तर के जिनालय चार शाश्वत मणिमयी।
चारणऋषी वंदन करें निज ध्याय पाते निजमही।।
विद्याधरों की टोलियाँ आकर प्रभू वंदन करें।
सौ इंद्र पूजित मंदिरों की हम सदा अर्चन करें।।८।।

ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वतस्थितचतुर्दिक्चतु:सिद्धकूटजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

नंदीश्वर में चार दिश, बावन जिनगृह सिद्ध।
नमूँ नमूँ नित भक्ति से, पाऊँ सौख्य समृद्ध।।९।।

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपे चतुर्दिक्संबंधिद्वापंचाशत्जिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

कुण्डलगिरि के जिनभवन, वांछित फलदातार।
पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय के, मिले भवोदधि पार।।१०।।

ॐ ह्रीं कुण्डलपर्वतस्थितचतुर्दिक्चतु:सिद्धकूटजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इस तेरवें पर्वत उपरि चारों दिशी जिनधाम हैं।
ये विघ्नपर्वत चूर्ण हेतू, वज्रसम सुखधाम हैं।।
जल गंध आदिक अर्घ्य लेकर, पूजते निधियाँ मिलें।
मनकामना सब पूर्ण होकर, हृदय की कलियाँ खिलें।।११।।

ॐ ह्रीं रुचकवरपर्वतस्थितचतुर्दिक्चतु:सिद्धकूटजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य—

मध्यलोक में चार सौ अट्ठावन जिनधाम।
पूरण अर्घ्य चढ़ाय के, शत शत करूँ प्रणाम।।१।।

ॐ ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतु:शताष्टपंचाशत् जिनालयेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

व्यंतर देवगृहों के जिनमंदिर के अर्घ्य

[1]इस रत्नप्रभा भू के पहले, खर भाग में भवन भूतसुर के।
ये चौदह सहस कहें पुनि पंकभाग में भवन राक्षसों के।।
वे सोलह हजार हैं पुनरपि, किन्नर आदि के गृह भूपर।
इन सबमें जिनगृह जिनप्रतिमा, मैं पूजूँ अंजलि मस्तक धर।।१२।।

ॐ ह्रीं अधोलोके भूतराक्षसदेवभवनस्थितत्रिंशत्सहस्रजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इन आठ प्रकार व्यंतरों के, अगणीत 'भवनपुर[2]' माने हैं।
ये असंख्यात द्वीपों व समुद्रों, में स्थित मुनि जाने हैं।।
इन सबमें असंख्यात जिनगृह, सबमें इक शत अठ जिनप्रतिमा।
मैं पूजूँ ध्याऊँ भक्ति करूँ, जिनदेव देव की बहु महिमा।।१३।।

ॐ ह्रीं अष्टविधव्यंतरदेवभवनपुरस्थितअसंख्यातजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तालाब व पर्वत वृक्षादिक, इन पर व्यंतर 'आवास' बने।
ये मध्यलोक में असंख्यात, द्वीपों व समुद्रों तक गिनने।।
इनमें जिनमंदिर असंख्यात, मैं अर्घ्य चढ़ाकर नित पूजूँ।
निज पर का भेद ज्ञान पाकर, सब जन्म मरण दुख से छूटूँ।।१४।।

ॐ ह्रीं अष्टविधव्यंतरदेवआवासस्थितअसंख्यातजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

---
१. त्रिलोकसार गाथा २९०। २. त्रिलोकसार गाथा २९४।

—पूर्णार्घ्य—

व्यंतर सुर के जिनभवन, असंख्यात परिमाण।
पूर्ण अर्घ्य लेकर जजूँ, शत शत करूँ प्रणाम।।

ॐ ह्रीं व्यंतरदेवभवनस्थितजिनालयेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

ज्योतिषी देवगृह के जिनमंदिर के अर्घ्य

यह शशि विमान है तीन सहस्र, छह सौ बाहत्तर मील कहा।
सब ढाई द्वीप के शशिविमान, इक सौ बत्तिस मुनिनाथ कहा।।
ये भ्रमणशील अर्ध गोलक, इन समतल मध्य कूट शोभे।
उस पर जिनमंदिर शाश्वत हैं, हम पूजें गुणमणि से शोभें।।१५।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधिएकशतद्वात्रिंशत्चन्द्रविमानस्थितएतावत्-जिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भास्कर विमान शशि से छोटे, ये जंबूद्वीप में दो ही हैं।
लवणोदधि में चउ धातकि में, बारह कालोदधि ब्यालिस हैं।।
वर पुष्करार्ध में बाहत्तर सब, मिलकर इक सौ बत्तिस हैं।
इन सबके मध्य जिनालय हैं, उनको पूजूँ वे शिवप्रद हैं।।१६।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधिएकशतद्वात्रिंशत्सूर्यविमानस्थितएतावत्-जिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इक चंद्र इंद्र के अट्ठासी, ग्रह अर्ध गोल सम चमक रहें।
ग्यारह हजार छह सौ सोलह, ये ढाई द्वीप ग्रह बिंब कहे।।
इन ग्रह विमान के मध्य कूट, उन पर जिनमंदिर शाश्वत हैं।
इन सब जिनमंदिर को पूजूँ, ये जिनप्रतिमा से भासत हैं।।१७।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधिएकादशसहस्रषट्शतषोडशग्रहविमान-स्थितएतावत् जिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इक चंद्र इंद्र के अट्ठाइस, नक्षत्र अर्ध गोलक सम हैं।
सब ढाई द्वीप में तीन सहस, छह सौ छियानवे नक्षत्र हैं।।

ये ढाई द्वीप में भ्रमण करें, इन सब विमान में जिनगृह हैं।
उन सबको पूजूँ भक्ती से, जिनभक्ती अतिशय सुखप्रद हैं।।१८।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधित्रयसहस्रषट्शतषण्णवतिनक्षत्रविमानस्थित-एतावत्जिनालयेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इक चंद्र के छ्यासठ सहस्र नौ सौ पछत्तर कोड़ाकोड़ी।
तारे हैं सब इक सौ बत्तिस, गुणिते जितने कोड़ाकोड़ी।।
अठयासि लाख चालिस हजार, सुसात शतक कोड़ाकोड़ी।
ये ढाई द्वीप के ताराओं के, जिनगृह जजूँ हाथ जोड़ी।।१९।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधिअष्टाशीतिलक्षचत्वारिंशत्सहस्रसप्तशतकोटि-कोटिप्रकीर्णकतारकाविमानस्थितएतावत्जिनालयेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य—

इन ज्योतिष सुर में चंद्र इंद्र, भास्कर प्रतीन्द्र माने जाते।
ग्रह अट्ठासी नक्षत्र अठाइस, शशि के परिकर कहलाते।।
छ्यासठ हजार नवसौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे हैं।
ये एक चंद्र परिवार इसी विध, ढाई द्वीप के सारे हैं।।१।।

—दोहा—

ढाई द्वीप में एक सौ, बत्तिस चंद्र विमान।
सबके परिकर पूर्ववत्, सबमें जिनवर धाम।।२।।
नमूँ नमूँ कर जोड़ के, शीश नमाकर आज।
प्रतिगृह इक सौ आठ जिन-बिंब नमूँ सुखकाज।।३।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपद्वयसमुद्रसंबंधिएकशतद्वात्रिंशत्चंद्रविमानएतत्परिवार-विमानस्थितसर्वजिनालयेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

चंद्र सूर्य ग्रह नखत तारका,ये सब संख्यातीत प्रमाण।
सबके मध्य जिनालय सुंदर, शाश्वत शोभे महिमावान।।

प्रति जिनगृह में प्रतिमा इक सौ, आठ-आठ पद्मासन जान।
सब जिनगृह जिनबिंब जजूँ मैं, नित नित नव मंगल सुखदान।।२०।।

ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वताद्बहिरसंख्यातद्वीपसमुद्रपर्यंतस्थिरअसंख्यातचंद्र-रविग्रहनक्षत्रतारकागणविमानस्थितसर्वसंख्यातीतजिनालयेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऊर्ध्वलोक जिनमंदिर का अर्घ्य

इंद्रक विमान त्रेसठ मानें, इनमें जिनमंदिर अविनश्वर।
अट्ठत्तर सौ सोलह विमान श्रेणीबद्ध में जिनगृह सुंदर।।
चौरासी लाख नवासि सहस, इक सौ चौवालिस प्राकीर्णक।
ये सब चौरासी लाख सत्यानवे, सहस सुतेइस जिनगृहयुत।।२१।।

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोके त्रिषष्टिइन्द्रकविमानअष्टसप्ततिशतषोडशश्रेणी-बद्धविमानचतुरशीतिलक्षएकोननवतिसहस्रएकशत चतुश्चत्वारिंशत्प्रकीर्णक-विमानस्थितसर्वचतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रत्रयोविंशतिजिनालयेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य-नरेन्द्र छंद—

त्रिभुवन के जिनमंदिर शाश्वत, आठ कोटि सुखराशी।
छप्पन लाख हजार सत्यानवे, चार शतक इक्यासी।।
प्रति जिनगृह में सौम्यछवी, मणिमय जिनप्रतिमा राजें।
अर्घ्य चढ़ाकर जजूँ यहाँ मैं, जन्म मरण दुख भाजें।।१।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबंधि-अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतै-काशीतिजिनालयेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ कृत्रिम जिनमंदिर के अर्घ्य

जंबूद्वीप में दक्षिण उत्तर, भरतैरावत जानो।
पूर्वापर बत्तिस विदेह में, कर्मभूमि सरधानो।।

इंद्र चक्रवर्ती मानवगण, जिनमंदिर बनवाते।
सर्व जिनालय को जजते ही, कर्मशत्रु भग जाते।।२२।।

ॐ ह्रीं जंबूद्वीपसंबंधिभरतैरावतविदेहक्षेत्रस्थितचतुस्त्रिंशत्कर्मभूमिषु सुरनरनिर्मितसर्वजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्व अपर धातकी खंड में, दो-दो भरतैरावत।
बत्तिस-बत्तिस विदेह मानें, कर्मभूमि वहाँ शाश्वत।।
इंद्र चक्रवर्ती मानवगण, जिनमंदिर बनवाते।
सर्व जिनालय को जजते ही, कर्मशत्रु भग जाते।।२३।।

ॐ ह्रीं पूर्वपश्चिमधातकीखण्डद्वीपसंबंधिद्विभरतद्वि-ऐरावत-चतु:षष्टिविदेहक्षेत्र-संबंधि-अष्टषष्टिकर्मभूमिषु सुरनरनिर्मापितसर्वजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूरब पश्चिम पुष्करार्ध में, दो दो भरतैरावत।
बत्तिस-बत्तिस विदेह क्षेत्र हैं, कर्मभूमि जहाँ शाश्वत।।
इंद्र चक्रवर्ती मानवगण, जिनमंदिर बनवाते।
सर्व जिनालय को जजते ही, कर्मशत्रु भग जाते।।२४।।

ॐ ह्रीं पूर्वपश्चिमपुष्करार्धद्वीपसंबंधिद्विभरतद्वि-ऐरावतचतु:षष्टि-विदेहक्षेत्रसंबंधि-अष्टषष्टिकर्मभूमिषु सुरनरनिर्मापितसर्वजिनालयेभ्य: अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य-नरेन्द्र छंद—

इन ढाई द्वीप में कर्मभूमी एक सौ सत्तर शुभा।
इन मध्य आरज खंड में, जिनधर्म भास्कर की प्रभा।।
कृत्रिम जिनालय अगणिते, मणिरत्न पार्थिव हैं यहाँ।
मैं जजूँ अर्घ्य चढ़ाय के, देवें अतुल सुख निधि यहाँ।।१।।

ॐ ह्रीं सार्धद्वयद्वीपसंबंधिसप्तत्यधिकशतकर्मभूमिमध्यइंद्रचक्रवर्ति-मनुष्यादिनिर्मापितमणिरत्नस्वर्णपार्थिवघटितत्रैकालिकसर्वजिनालयेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—पूर्णार्घ्य-दोहा—

त्रिभुवन के सब जिनभवन, शाश्वत संख्यातीत।
कृत्रिम कहें अनंत हैं, नमूँ नमूँ नत शीश।।२।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवनसंबंधि-शाश्वतासंख्यातत्रिकालसंबंधि-कृत्रिमानंत-जिनालयेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलि:।

जाप्य-**ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यचैत्यालयेभ्यो नम:।**

जयमाला

—दोहा—

जय त्रिभुवन के जिनभवन, जिनप्रतिमा जिनसूर्य।
नमूँ अनंतों बार मैं, भव्यकमलिनी सूर्य।।१।।

—शंभु छंद—

जय अधोलोक के जिनगृह सात करोड़ बहत्तर लाख नमूँ।
जय मध्यलोक के चार शतक अट्ठावन जिनगृह नित्य नमूँ।।
जय व्यंतरसुर ज्योतिषसुर के, जिनगेह असंख्याते प्रणमूँ।
जय ऊरध के चौरासि लाख, सत्यानवे सहस तेईस नमूँ।।२।।

अठ कोटि सुछप्पन लाख सत्यानवे, सहस चार सौ इक्यासी।
जिनधाम अकृत्रिम नमूँ नमूँ, ये कल्पवृक्ष सम सुखराशी।।
प्रतिमंदिर मध्य गर्भगृह इक सौ, आठ-आठ अतिसुंदर हैं।
इन गर्भगृह में सिंहासन पर, जिनवर बिंब मनोहर हैं।।३।।

जिनमंदिर लंबे सौ योजन, पचहत्तर तुंग विस्तृत पचास।
उत्कृष्ट प्रमाण कहा श्रुत में, मध्यम लंबे योजन पचास।।
चौड़े पचीस ऊँचे साढ़े, सैंतीस जघन्य लंबे पचीस।
चौड़े साढ़े बारह योजन, ऊँचे योजन पौने उनीस।।४।।

मेरू में भद्रसाल नंदनवन, के वरद्वीप नंदीश्वर के।
उत्कृष्ट जिनालय मुनि कहते, मैं नमूँ नमूँ अंजलि करके।।

सौमनस रूचकगिरि कुण्डलगिरि वक्षार कुलाचल के मंदिर।
मनुजोत्तर इष्वाकार अचल, मध्यम प्रमाण के जिनमंदिर।।५।।
पांडुकवन के जिनगृह जघन्य, परिमाण नमूँ शिर नत करके।
रजताचल जंबू शाल्मलितरु, इनके मंदिर सबसे छोटे।।
ये एक कोश लम्बे आधे, चौड़े पौने कोश ऊँचे हैं।
सर्वत्र लघू जिनमंदिर का, परिमाण यही मुनि कहते हैं।।६।।
जिनगृह को बेढ़े तीन कोट, चहुँदिश में गोपुर द्वार कहें।
प्रतिवीथी मानस्तंभ बने, प्रतिवीथी नव नव स्तूप कहें।।
मणिकोट प्रथम के अन्तराल, वनभूमि लतायें मन हरतीं।
परकोट द्वितीय के अंतराल, दशविधि ध्वजायें फरहरतीं।।७।।
परकोट तृतीय के बीच चैत्यभूमी अतिशायि शोभती है।
सिद्धार्थवृक्ष अरु चैत्यवृक्ष, बिंबों से चित्त मोहती है।।
गर्भगृह आगे श्रीमंडप, वहं धूप घड़े मंगल कलशा।
मणिमय सुवर्णमय मालाएं, बहुविध रचना से मन हर्षा।।८।।
पण भरत पाँच ऐरावत हैं, अरु इक सौ साठ विदेह कहे।
सब इक सौ सत्तर कर्मभूमि में, कृत्रिम जिनगृह शोभ रहे।।
सुर नर निर्मित जिनमंदिर ये, त्रयकालिक सर्व अनंत हुए।
इन सबको वंदूँ बार बार, ये मनवांछित फलदायि कहें।।९।।

दोहा— कृत्रिम अकृत्रिम सभी, पूजूँ जिनवर धाम।
ज्ञानमती कैवल्य हो, जहाँ पूर्ण विश्राम।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीजगत्त्रयवर्तिजिनचैत्यालयेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

—शेरछंद—

जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवोनिधि से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमती' से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंत सौख्य भरेंगे।।१।।

।।इत्याशीर्वादः।।

बड़ी जयमाला

—दोहा—

विश्ववंद्य नवदेवता, नवलब्धी दातार।
नमूँ नमूँ नितभक्ति से, भरूँ सुगुण भंडार।।१।।

—शंभु छंद—

जय जय अर्हंत देव जिनवर, जय जय छ्यालिस गुण के धारी।
जय समवसरण वैभव श्रीधर, जय जय अनंत गुण के धारी।।
जय जय जिनवर केवलज्ञानी, गणधर अनगार केवली सब।
जय गंधकुटी में दिव्यध्वनी, सुनते असंख्य सुर नर पशु सब।।२।।

इक सौ सत्तर जो कर्मभूमि, उनमें जिनवर होते रहते।
फिर कर्म अघाती भी हनकर, वे सिद्धिवधू वरते रहते।।
ये सिद्ध अनंतानंत हुए, हो रहे और भी होवेंगे।
जय जय सब सिद्धों की वे मुझ, सिद्धी में हेतू होवेंगे।।३।।

निज साम्य सुधारस आस्वादी, मुनिगण जहं नित्य विचरते हैं।
आचार्य प्रवर चउविध संघ के, नायक जहं मार्ग प्रवर्ते हैं।।
दीक्षा शिक्षा देकर शिष्यों पर, अनुग्रह निग्रह भी करते।
प्रायश्चित देकर शुद्ध करें, बालकवत् पोषण भी करते।।४।।

गुरु उपाध्याय मुनि अंग पूर्व, शास्त्रों का वाचन करते हैं।
चउविध संघों को यथायोग्य, श्रुत का अध्यापन करते हैं।।
मिथ्यात्व तिमिर से मार्ग भ्रष्ट, जन को सम्यक् पथ दिखलाते।
जो परम्परा से गुरुमुख से, पढ़ते वे निज निधि को पाते।।५।।

निज आत्म साधना में प्रवीण, अतिघोर तपस्या करते हैं।
वे साधू शिवमारग साधें, बहु ऋद्धि सिद्धि को वरते हैं।।
विक्रिया ऋद्धि चारण ऋद्धी, सर्वौषधि ऋद्धी धरते हैं।
अक्षीण महानस ऋद्धी से, सब जन को तर्पित करते हैं।।६।।

इन सब ही कर्मभूमियों में, जन्में ही मुनि बन सकते हैं।
फिर गगन गमन ऋद्धी बल से, सर्वत्र भ्रमण कर सकते हैं।।
वे ढाई द्वीप तक ही जाते, उससे बाहर नहिं जा सकते।
नर जन्म व मुक्ती मार्ग यहीं, यहाँ से ही सिद्धी पा सकते।।७।।

तीर्थंकर धर्मचक्रधारी, जिनधर्म प्रवर्तन करते हैं।
इन कर्मभूमियों में ही वे, शिवपथ का वर्तन करते हैं।।
जय जय इस जैनधर्म की जय, यह सार्वभौम है धर्म कहा।
सब प्राणिमात्र को अभयदान, देवे सब सुख की खान कहा।।८।।

तीर्थंकर के मुख से खिरती, वाणी सब जन कल्याणी है।
गणधर गुरु उसको धारण कर, सब ग्रंथ रचें जिनवाणी है।।
गुरु परम्परा से अब तक भी, यह सारभूत जिनवाणी है।
इसकी जो पूजा भक्ति करे, उनके भव-भव दुख हानी है।।९।।

इस जंबूद्वीप की आठ सहस, अरु चार शतक चौबिस प्रतिमा।
उनचास सहस छह सौ चौंसठ, ये मध्यलोक की जिनप्रतिमा।।
नवसौ पचीस कोटि त्रेपन, अरु लाख सत्ताइस सहस कहीं।
नवसौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, त्रिभुवन की मैं नित नमूँ सही।।१०।।

व्यंतर ज्योतिष के असंख्यात, जिनगृह की जिनप्रतिमाएं हैं।
प्रति जिनगृह इक सौ आठ, एक सौ आठ रहें प्रतिमायें हैं।।
इन ढाई द्वीप दो समुद्र में, कृत्रिम जिनप्रतिमा अगणित हैं।
सुरपति चक्री हलधर आदिक, नर सुरकृत वंदित सुखप्रद हैं।।११।।

जो प्रतिमा प्रातिहार्य संयुत, अरु यक्ष यक्षिणी से युत हैं।
निज चिन्ह व मंगल द्रव्य सहित, वे अर्हंतों की प्रतिकृति हैं।।
सब प्रातिहार्य चिन्हादि रहित, प्रतिमा सिद्धों की कहलाती।
अथवा अकृत्रिम प्रतिमाएं, सब सिद्धों की मानी जाती।।१२।।

आचार्य उपाध्याय साधू की, प्रतिमाएं कर्मभूमि में हैं।
कुछ पंचपरमेष्ठी नव देवों की, प्रतिमाएं भी निर्मित हैं।।

अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय, साधु पंच परमेष्ठी हैं।
जिनधर्म जिनागम जिनप्रतिमा, जिनगृह सब मिल नव देव कहें।।१३।।

इस जंबूद्वीप के अकृत्रिम, जिनमंदिर अट्ठत्तर ही हैं।
जिनमंदिर शाश्वत चार शतक, अट्ठावन मध्यलोक में हैं।।
ये सात करोड़ बहत्तर लख, जिनमंदिर भवनवासि के हैं।
चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेइस वैमानिक के हैं।।१४।।

अठ कोटि सुछप्पन लक्ष सत्तानवे, सहस चार सौ इक्यासी।
सब जिनगृह व्यंतर ज्योतिष के, उन संख्यातीत कही राशी।।
त्रिभुवन के ये शाश्वत मंदिर, उन सबका वंदन करते हैं।
नरपति सुरपति निर्मित जिनगृह, उन सबको भी नित नमते हैं।।१५।।

इन ढाईद्वीपों से बाहर, बस शाश्वत जिनगृह जिनप्रतिमा।
नहिं पंच परमगुरु आदि वहाँ, नहिं शिवपथ नहिं नर गमन वहाँ।।
सब इंद्र इंद्राणी देव-देवियाँ, भक्ती से वहाँ जाते हैं।
वंदन पूजन अर्चन करके, अतिशायी पुण्य कमाते हैं।।१६।।

फिर भी इन कर्मभूमियों में, जन्मे मानव सुकृतशाली।
जो रत्नत्रय का साधन कर, शिव प्राप्त करें महिमाशाली।।
तीर्थंकर आदि महापुरुषों, को सुरपति भी वंदन करते।
कब मिले मनुजभव तप धारें, शिव लहें भावना मन धरते।।१७।।

इन कर्मभूमि की महिमा से ही, जंबूद्वीप महान कहा।
निज आत्म सुधारस आस्वादी, मुनिगण करते हैं वास यहाँ।।
बहिरात्म अवस्था छोड़ अंतरात्मा बन नर पुरुषार्थ करें।
परमानंदामृत आस्वादी, परमात्मा बन शिवनारि वरें।।१८।।

हे नाथ! अनादी से लेकर, अब तक भि अनंतों कालों तक।
चारों गति में मैं घूम रहा, दुख सहा अनंतों कालों तक।।
अब धन्य हुआ तुम भक्ति मिली, सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया।
बस रत्नत्रय को पूर्ण करो, इस हेतू से ही शरण लिया।।१९।।

जय जय अर्हंत सिद्ध सूरी, जय उपाध्याय साधूगण की।
जय जय जिनधर्म जिनागम की, जय जय जिनबिंब जिनालय की।।
जय त्रयकालिक नवदेवों की, जय चिन्मय ज्योति निरंजन की।
जय जय त्रैलोक्य अभयदायक, जय जय जय श्रीजिनशासन की।।२०।।

जय जय अर्हंत सिद्ध सूरी, जय उपाध्याय साधूगण की।
जय जय जिनधर्म जिनागम की, जय जय जिनबिंब जिनालय की।।
जय त्रयकालिक नवदेवों की, जय चिन्मय ज्योति निरंजन की।
जय जय त्रैलोक्य अभयदायक, जय जय जय श्री जिनशासन की।।२१।।

—दोहा—

नमूँ नमूँ नवदेवता, मिले सर्व इष्टार्थ।
केवल ज्ञानमती सहित, फले मोक्ष पुरुषार्थ।।२२।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

—शेरछंद—

जो भक्ति से नवदेवता विधान करेंगे।
वे भव्य नवों निधी से भंडार भरेंगे।।
कैवल्य 'ज्ञानमती' से नवलब्धि वरेंगे।
फिर मोक्षमहल में अनंत सौख्य भरेंगे।।१।।

।। इत्याशीर्वादः।।

प्रशस्ति

—दोहा—

श्री ऋषभदेव से वीर तक, तीर्थंकर भगवान।
श्री भरत बाहुबलि चरण में, नमूँ नमूँ शुभ ध्यान।।१।।

मूलसंघ में कुंदकुंद-अन्वय सरस्वति गच्छ।
बलात्कारगण में हुए, सूरि नमूँ मन स्वच्छ।।२।।

सदी बीसवीं के प्रथम गुरु महान आचार्य।
चरित चक्रवर्ती श्री-शांतिसागराचार्य।।३।।

इनके पहले शिष्य श्री-वीरसागराचार्य।
प्रथमहि पट्टाचार्य गुरु, नमूँ भक्ति उर धार्य।।४।।

वीर अब्द पच्चीस सौ-तेंतिस जग विख्यात।
शरत्पूर्णिमा जन्मतिथि, मंगलमयी प्रभात।।५।।

तीन मूर्ति जिनभवन में, जिनवर चरण समीप।
जिनवर गुरुवर सरस्वती, इन चरणों में प्रीत।।६।।

'नवदेवता विधान' यह, पूर्ण किया सुखकार।
करो करावो भव्यजन, यह विधान रुचि धार।।७।।

जब तक नहिं हो 'ज्ञानमती', केवल एक महान्।
तब तक जग में स्थायि हो, यह नवदेव विधान।।८।।

हस्तिनागपुर तीर्थ पर, जब तक तेरहद्वीप।
तब तक महाविधान यह, बने सिद्धिपथ दीप।।९।।

।। इति श्री नवदेवताविधानं संपूर्णम् ।।
।। जैनं जयतु शासनम् ।।

आरती

रचयित्री—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

ॐ जय नवदेव प्रभो, स्वामी जय नवदेव प्रभो।
शरण तुम्हारी आए, आरति हेतु प्रभो।। ॐ जय.।।

श्री अरिहंत जिनेश्वर, प्रथम देव माने। स्वामी प्रथम........
दूजे देव कहाते, सिद्धशिला स्वामी।। ॐ जय.....।।1।।

चउसंघ नायक सूरी, तृतिय देवता हैं। स्वामी तृतिय......
चौथे देव कहाए, उपाध्याय मुनि हैं।। ॐ जय.......।।2।।

सर्वसाधु हैं पंचम, श्री जिनधर्म छठा। स्वामी श्री जिन............
सप्तम देव जिनागम, जिनवचसार कहा।। ॐ जय....।।3।।

श्री जिनचैत्य हैं अष्टम, जिनप्रतिमा जानो। स्वामी जिन........
श्री जिनचैत्यालय को, देव नवम मानो।।ॐ जय....।।4।।

ढाई द्वीप के अन्दर, ये नव देव रहें। स्वामी ये नव.......
उनकी भक्ती करके, नर भी देव बनें।।ॐ जय....।।5।।

दो ही देवता आगे, द्वीपों में माने। स्वामी द्वीपों...........
श्री जिनचैत्य जिनालय, अकृत्रिम माने।।ॐ जय....।।6।।

नवदेवों की आरति, करते जो निश दिन। स्वामी करते....
लहें ''चंदनामति'' वे, सुख साधन प्रतिपल।।ॐ जय....।।7।।

भजन

रचयित्री—आर्यिका चन्दनामती

अरे, जग जा रे चेतन! नींद से,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।टेक.।।
काल अनादी से इस जग में-2
भ्रमण करे तू चारों गति में-2।
अरे, मोह नींद को दूर भगा,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।1।।
मानुष तन दुर्लभ है जग में-2,
सदुपयोग इसका तू कर ले-2।
अरे, विषय कषाय को त्याग दे,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।2।।
पर का कुछ उपकार भी कर ले-2,
सज्जन का सत्कार भी करले-2।
अरे, कर ले आतम ध्यान भी,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।3।।
सात व्यसन का त्याग तू कर दे-2,
पाँच पाप भी मन से तज दे-2।
अरे, धर्म में कर अनुराग रे,
तुझे सतगुरु आये जगावन को।।4।।
कहे ''चन्दनामती'' सभी से-2,
कर लो मैत्री भाव सभी से-2।
अरे, भज ले प्रभु का नाम रे,
तुझे सतगुरु आये जगवान को।।5।।

नवदेवता व्रत (रूपार्थवल्लरी व्रत)

व्रतविधि–नवदेवता व्रत का दूसरा नाम रूपार्थवल्लरी व्रत है। यह आश्विन शुक्ला एकम से आश्विन शुक्ला नवमी तक किया जाता है, पुनः दशमी को पूजा करके आहार दानादि देकर व्रत का समापन करें, इस प्रकार 9 वर्ष तक यह व्रत किया जाता है।

''श्री जैनेन्द्र व्रत कथा संग्रह (मराठी)'' के अनुसार यह व्रत है। इसमें स्नान आदि कर शुद्ध वस्त्र पहनकर मंदिर जावें, वहाँ मंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान को पंचांग नमस्कार करें। पुनः नवदेवता की प्रतिमा की पंचामृत अभिषेक, पूजा करके, श्रुत, गणधर की पूजा एवं क्षेत्रपाल-पद्मावती की अर्चना करें। भगवान को 9 प्रकार के नैवेद्य चढ़ावें, 108 पुष्पों से मंत्र जाप्य करें, ब्रह्मचर्यपूर्वक दिवस बितावें, दूसरे दिन पूजा-दानादि करके पारणा करें।

इस प्रकार 9 दिन पूजा करके दशवें दिन जिनपूजा करके पूजा का विसर्जन करें। 9 वर्ष करके यथाशक्ति उद्यापन करें, चतुर्विध संघ को चार प्रकार का दान देवें। उत्तम विधि उपवास, मध्यम अल्पाहार व जघन्य विधि एकाशन (एक बार शुद्ध भोजन) है। इस व्रत को करने से पुत्रसुखप्राप्ति, धन की वृद्धि, यश-कीर्ति की प्राप्ति होकर पर भव में मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

व्रत की जाप्य–

समुच्चय मंत्र–**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्म जिनागम जिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो नमः।**

प्रत्येक व्रत के अलग-अलग मंत्र–

1. ॐ ह्रीं अर्हं अर्हत्परमेष्ठिभ्यो नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः।
3. ॐ ह्रीं अर्हं आचार्य परमेष्ठिभ्यो नमः।
4. ॐ ह्रीं अर्हं उपाध्याय परमेष्ठिभ्यो नमः।
5. ॐ ह्रीं अर्हं सर्वसाधु परमेष्ठिभ्यो नमः।
6. ॐ ह्रीं अर्हं जिनधर्मेभ्यो नमः।
7. ॐ ह्रीं अर्हं जिनागमेभ्यो नमः।
8. ॐ ह्रीं अर्हं जिनचैत्येभ्यो नमः।
9. ॐ ह्रीं अर्हं जिनचैत्यालयेभ्यो नमः।

गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की पूजन

रचयित्री - प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

-स्थापना-

पूजन करो जी-
श्री गणिनी ज्ञानमती माताजी की, पूजन करो जी।
जिनकी पूजन करने से, अज्ञान तिमिर नश जाता है।
जिनकी दिव्य देशना से, शुभ ज्ञान हृदय बस जाता है।।
उनके श्री चरणों में, आह्वानन स्थापन करते हैं।
सन्निधिकरण विधीपूर्वक, पुष्पांजलि अर्पित करते हैं।।
पुष्पांजलि अर्पित करते हैं.......
पूजन करो जी,
श्री गणिनी ज्ञानमती माताजी की पूजन करो जी।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मातः ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मातः ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मातः! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

-अष्टक-

ज्ञानमती जी नाम तुम्हारा, ज्ञान सरित अवगाहन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।
मुझ अज्ञानी ने माँ जबसे, तेरी छाया पाई है।
तब से दुनिया की कोई छवि, मुझको लुभा न पाई है।।
ज्ञानामृत जल पीने हेतू, तव पद में मेरा मन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।1।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन और सुगंधित गंधों, की वसुधा पर कमी नहीं।
लेकिन तेरी ज्ञान सुगन्धी, से सुरभित है आज मही।।
उसी ज्ञान की सौरभ लेने, को आतुर मेरा मन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।2।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

जग के नश्वर वैभव से, मैंने शाश्वत सुख था चाहा।
पर तेरे उपदेशों से, वैराग्य हृदय मेरे भाया।।
अक्षय सुख के लिए मुझे, तेरा प्रवचन ही साधन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।3।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामदेव ने निज बाणों से, जब युग को था ग्रसित किया।
तुमने अपनी कोमल काया, लघुवय में ही तपा दिया।।
इसीलिए तव पद में आकर, शान्त हुआ मेरा मन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।4।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मानव सुन्दर पकवानों से, अपनी क्षुधा मिटाते हैं।
लेकिन उनके द्वारा भी नहिं, भूख मिटा वे पाते हैं।।
आत्मा की संतृप्ति हेतु, तव वाणी मेरा भोजन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।5।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विद्युत के दीपों से जग ने, गृह अंधेर मिटाया है।
ज्ञान का दीपक लेकर तुमने, अन्तरंग चमकाया है।।
घृत का दीपक लेकर माता, हम करते तव प्रणमन हैं।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।6।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों ने ही अब तक मुझको, यह भव भ्रमण कराया है।
तुमने उन कर्मों से लड़कर, त्याग मार्ग अपनाया है।।
धूप जलाकर तेरे सम्मुख, हम करते तव पूजन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।7।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कितने खट्टे मीठे फल को, मैंने अब तक खाया है।
तुमने माँ जिनवाणी का, अनमोल ज्ञानफल खाया है।।
तव पूजनफल ज्ञाननिधी, मिल जावे यह मेरा मन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।8।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पिच्छि कमण्डलुधारी माता, नमन तुम्हें हम करते हैं।
अष्ट द्रव्य का थाल सजाकर, अर्घ्य समर्पण करते हैं।।
युग की पहली ज्ञानमती के, चरणों में अभिवन्दन है।
तेरी पावन प्रतिभा लखकर, मेरा मन भी पावन है।।9।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

- शेरछंद-

हे माँ तू ज्ञान गंग की पवित्र धार है।
तेरे समक्ष गंगा की लहरें बेकार हैं।।
उस धार की कुछ बूँदों से जलधार मैं करूँ।
वह ज्ञान नीर मैं हृदय के पात्र में भरूँ।।

शांतये शांतिधारा.........।।

स्याद्वाद अनेकान्त के उद्यान में माता।
बहुविध के पुष्प खिले तेरे ज्ञान में माता।।
कतिपय उन्हीं पुष्पों से मैं पुष्पांजलि करूँ।
उस ज्ञानवाटिका में ज्ञान की कली बनूँ।।

दिव्य पुष्पांजलिं क्षिपेत्.....।।

जयमाला

-दोहा-

ज्ञानमती को नित नमूँ, ज्ञान कली खिल जाय।
ज्ञानज्योति की चमक में, जीवन मम मिल जाय।।

धुन-नागिन-मेरा मन डोले.....।

हे बालसती, माँ ज्ञानमती, हम आए तेरे द्वार पे,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।
शरद पूर्णिमा दिन था सुन्दर, तुम धरती पर आईं।
सन् उन्निस सौ चौंतिस में माँ, मोहिनि जी हर्षाईं।। माता...।।
थे पिता धन्य, नगरी भी धन्य, मैना के इस अवतार पे,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।1।।

बाल्यकाल से ही मैना के, मन वैराग्य समाया।
तोड़ जगत के बंधन सारे,छोड़ी ममता माया।। माता....।।
गुरु संग मिला, अवलम्ब मिला, पग बढ़े मुक्ति के द्वार पे,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।2।।

शान्तिसिन्धु की प्रथम शिष्यता, वीरसिन्धु ने पाई।
उनकी शिष्या ज्ञानमती जी ने ,ज्ञान की ज्योति जलाई।। माता....।।
शिवरागी की, वैरागी की, ले दीप सुमन का थाल रे,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।3।।

माता तुम आशीर्वाद से, जम्बूद्वीप बना है।
हस्तिनापुर की पुण्यधरा पर, कैसा अलख जगा है।। माता....।।
ज्ञान ज्योति चली, जग भ्रमण करी, तेरे ही ज्ञान आधार पे,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।4।।

तीर्थ अयोध्या-मांगीतुंगी, का विकास करवाया।
फिर प्रयाग में तपस्थली का, नूतन तीर्थ बनाया।। माता.....।।
प्रभु समवसरण, रथ हुआ भ्रमण, श्री ऋषभदेव के नाम का,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।5।।

कुण्डलपुर तीरथ विकास की, नई प्रेरणा आई।

महावीर की जन्मभूमि में, अगणित खुशियाँ छाईं।। माता...।।
महावीर ज्योति, रथ से उद्योत, कर दिया पुनः संसार को,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।6।।

तीर्थंकर की जन्मभूमियों, का विकास करवाया।
पार्श्वनाथ के उत्सव का फिर, तुमने बिगुल बजाया।। माता.......।।
संदेश दिया, उपदेश दिया, भावना हुई साकार है,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।7।।

यथा नाम गुण भी हैं वैसे, तुम हो ज्ञान की दाता।
तुम चरणों में आकर के हर, जनमानस हर्षाता।।माता....।।
साहित्य सृजन, श्रुत में ही रमण, कर चलीं स्वात्म विश्राम पे,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।8।।

गणिनी माता के चरणों में, यही याचना करते ।
कहे ''चन्दनामती'' ज्ञान की , सरिता मुझमें भर दे।।माता.....।।
ज्ञानदाता की, जगमाता की, वन्दना करूँ शतबार मैं,
शुभ अर्घ्य संजोकर लाए हैं।।9।।

-दोहा-

लोहे को सोना करे, पारस जग विख्यात।
तुम जग को पारस करो, स्वयं ज्ञानमति मात।।10।।

ॐ ह्रीं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मात्रे जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

-शंभुछंद-

जो गणिनी ज्ञानमती माता की, करें सदापूजा रुचि से।
वे ज्ञानामृत से निज मन को, पावन कर अभिसिंचित करते।।
इस शरदपूर्णिमा के चन्दा की, ज्ञानरश्मियाँ बढ़ें सदा।
''चन्दनामती'' युग युग तक यह, आलोक जगत को मिले सदा।।